होशंगाबाद विज्ञान

दिसम्बर, 1984
अंक : 15

यादगार

हाल ही में प्रसिद्ध कवि फैज़ अहमद फ़ैज़ का निधन हो गया। अपनी बहुआयामी जिंदगी में फैज़ ने कई मोर्चों पर संघर्ष किया, मज़दूर संघों के गठन से लेकर पत्रकारिता तक की। सामाजिक शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के जुर्म में बहुत दिन सलाखों के पीछे रहे और जलावतन (देश निकाला) किये गये। फिर भी शायरी से जीवन के अंत तक उनका एक अटूट रिश्ता बना रहा। इन्सान और इन्सानियत के हक्क में मुसलसल (लगातार) लड़ाई जारी रखने से उनकी आवाज़ कई वर्षों से तीसरी दुनिया के शोषित और परेशान वर्गों का प्रतिनिधित्व करती रही।

यहाँ फैज़ की दो कविताएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

तुम अपनी करनी कर गुज़रो

अब क्यों उस दिन का जिक्र करो
जब दिल टुकड़े हो जायेगा
और सारे गम मिट जायेंगे,
जो कुछ पाया, खो जायेगा,
जो मिल न सका वह पायेंगे।

यह दिन तो वही पहला दिन है
जो पहला दिन था चाहत का।
हम जिसकी तमन्ना करते रहे,
और जिससे हरदम डरते रहे।

यह दिन तो कितनी बार आया।
सौ बार बसे और उजड़ गये,
सौ बार लुटे और भर पाया।

अब क्यों उस दिन की फिक्र करो
जब दिल टुकड़े हो जायेगा;
और सारे ग़म मिट जायेंगे।

तुम खौफ-ओ-खतर से दर-गुज़रो,
जो होना है सो होना है।
गर हँसना है तो हँसना है।
गर रोना है तो रोना है।
तुम अपनी करनी कर गुज़रो।
जो होगा, देखा जायेगा।

तराना

दरबारे-वतन में जब इक दिन
सब जाने वाले जायेंगे
कुछ अपनी सज़ा को पहुँचेंगे,
कुछ अपनी ज़ज़ा[1] ले जायेंगे।

ऐ खाकनशीनों, उठ बैठो,
वह वक्त करीब आ पहुँचा है
जब तख्त गिराये जायेंगे,
जब ताज उछाले जायेंगे।

अब टूट गिरेंगी जंजीरें,
अब जिन्दानों[2] की खैर नहीं
जो दरिया झूम के उट्ठे हैं,
तिनकों से न टाले जायेंगे।

कटते भी चलो, बढ़ते भी चलो,
बाजू भी बहुत हैं, सर भी बहुत
चलते भी चलो कि अब डेरे
मंजिल ही पे डाले जायेंगे।

ऐ जुल्म के मारो, लब खोलो,
चुप रहने वालो, चुप कब तक
कुछ हश्र तो उनसे उट्ठेगा,
कुछ दूर तो नाले जायेंगे।

1. पुरस्कार, 2. जेलखानों

नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ

इस अंक में....

1.	भोपाल त्रासदी	.. 1
2.	पाठक लिखते हैं	.. 8
3.	विज्ञान क्या है?	.. 10
4.	कीटों में सहजबोध	.. 13
5.	दौड़ सवाल जवाब की	.. 14
6.	अनुवर्तन	.. 15
7.	मासिक गोष्ठियों से	.. 16
8.	चुम्बक से चाँद तक	.. 19
9.	भाषा का विकास	.. 21
10.	शिक्षक की दुनिया	.. 23
11.	सवालीराम	.. 26
12.	एक और नया कदम	.. 29
13.	सा. अध्ययन की पढ़ाई...	.. 32
14.	विज्ञान का प्रारम्भ	.. 35
15.	बाल मनोविज्ञान	.. 36
16.	अध्यापक की मंशा कितनी कारगर	.. 38
17.	पहेलियों	.. 40
18.	विज्ञान जनता के हित में	.. 41

भोपाल त्रासदी

कुछ बुनियादी तथ्य

दो दिसम्बर की रात भोपाल के नागरिकों के लिए एक भयानक रात थी। यूनियन कार्बाइड के कारखाने से गैस रिसन के कारण हजारों परिवारों को यमराज के दर्शन हुए। मृतकों की संख्या तीन और चार हजार के बीच बताई जाती है, लेकिन लाशें इतनी थीं कि गिनती करना लगभग असम्भव हो गया और वास्तव में कितने लोग गुजर गये शायद कोई नहीं बता सकता। पता नहीं गैस से प्रभावित लोगों में से कितने और अगले दिनों में मौत के या मौत जैसी जिन्दगी के शिकार हो जाएँगे।

सवाल यह उठता है कि क्या ऐसी दुर्घटना का होना स्वाभाविक था या उसे रोका जा सकता था। उजागर हुए तथ्यों से उत्तर गूँजता है—दुर्घटना का होना स्वाभाविक नहीं था, बिलकुल नहीं।

केन्द्रीय पर्यावरण विभाग के एक नियम के अनुसार प्रदूषणकारी कारखानों को किसी भी शहर की आबादी से 50 किलोमीटर दूर और अगले दस वर्षों में शहर के बढ़ाव की दिशा से 25 किलोमीटर दूर स्थित होना चाहिए। यूनियन कार्बाइड कारखाने के संदर्भ में जहाँ जहरीली गैस 'मिक' (मिथाइल आइसोसायनेट) इत्यादि बनते थे, इस नियम का उल्लंघन कैसे किया गया ? इसमें सरकारी संचालन संस्थाओं की क्या कमी रही ?

इसके अलावा कारखाने को चलाने के कई कड़े नियम हैं, जिनके अनुसार अनेक सावधानियाँ बरतना प्रबंधकों का कर्त्तव्य होता है। ऐसा सिद्ध किया जा चुका है कि बहुत अर्से से खर्चा कम करने की हवस में कारखाने के प्रबंधक यह सावधानियाँ पूरी तरह नहीं बरत रहे थे। इसके लिये जिम्मेदार कौन है जबकि खतरे की चेतावनी प्रबंधकों को तथा विधान सभा में भी दी जा चुकी थी ? आगे से ऐसी दुर्घटनाओं को रोकने के लिये इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना अनिवार्य हो जाता है।

एक और अजीब बात जो सामने आई वह यह है कि इस दर्दनाक त्रासदी के होने तक भोपाल के अधिकतम नागरिकों को यह नहीं मालूम था कि यूनियन कार्बाइड कारखाने में अत्यन्त जहरीली गैसों का उपयोग होता है, जो उनके लिये कभी भी जानलेवा खतरे का साधन बन सकती हैं। क्या ऐसे घातक खतरे के साये में रहने वालों का यह अधिकार नहीं कि उन्हें इस खतरे से सतर्क कराया जाए ? उन्हें पहले से बताया जाए कि दुर्घटना की स्थिति में क्या करना चाहिये ? अगर हमारे पास जानकारी हासिल करने के वैधानिक अधिकार हैं भी, तो उन अधिकारों से लाभ उठाने के साधन और क्षमता विकसित नहीं है। शायद हमें सवाल पूछने का साहस नहीं होता और अगर सवाल उठते भी हैं तो उनके जवाब खोज निकालना नहीं आता।

आज हमारे देश में बड़े-बड़े कारखाने विकास के प्रतीक बने हुए हैं। जगह-जगह पर नए कारखाने खुल रहे हैं। क्या आपको पता है कि इन कारखानों में किन पदार्थों का उपयोग होता है ? क्या आपको पता है कि जो धुआँ कारखाने की लम्बी चिमनियों से निकल कर हवा में फैल रहा है या जो पानी कारखाने की गन्दी नालियों से बह कर नदियों में मिल रहा है कहीं वह हानिकारक तो नहीं ? इसमें कोई शक नहीं कि औद्योगीकरण की हमारे विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। मगर यह देखना आवश्यक है कि औद्योगीकरण हमारे स्वास्थ्य और जान के लिये नये-नये खतरे न पैदा करे।

इस बात का निराकरण हम तभी कर सकते हैं जब हम यह जानें कि कारखाने की उत्पादन प्रक्रिया क्या है ? कारखाने में से कौन-कौन से बहिष्प्रवाही बाहर निकल रहे हैं ? इन पदार्थों का हमारे स्वास्थ्य पर छोटी और लम्बी अवधि में क्या असर पड़ सकता है ? कारखाने में घातक और विषैले पदार्थों के रख-रखाव और उपयोग के दौरान कौन-सी सावधानियाँ बरतना आवश्यक है ? और क्या वास्तव में यह सावधानियाँ बरती जाती हैं या नहीं ?

अनुभव हमें सिखाता है कि सावधानी बरतने के नियमों का पालन कभी कारखाने के प्रबंधकों पर नहीं छोड़ा जा सकता । दुर्भाग्यवश इस सम्बन्ध में सरकारी कारखानों का रिकार्ड भी निजी कारखानों से बेहतर नहीं। कारखाने के बहिष्प्रवाही पदार्थों को निष्क्रिय करने और विषैले पदार्थों को सुरक्षित रखने के उपकरण अक्सर खर्चीले होते हैं । देखा गया है कि अधिक मुनाफे की खातिर बड़ी संख्या में कारखाने या तो उपयुक्त उपकरणों को लगवाते ही नहीं या लगाने पर भी उनका नियमित रूप से उपयोग नहीं करते । कारखानों को सुरक्षित ढंग से केवल उन्हीं देशों में चलाया जा सका है, जहाँ स्थानीय लोग सतर्क रहे हैं। जहाँ उन्होंने पर्यावरण परिरक्षण को लेकर न केवल सवाल खड़े किए हैं बल्कि उन सवालों के उत्तर पाने के लिए कठिनाइयों को झेला है, संघर्ष किया है और यह साबित कर दिखाया है कि लोकतन्त्र उनके लिये केवल नाममात्र एक प्रतीक ही नहीं एक वास्तविकता भी है। शायद ऐसा कर दिखाना अब हम सबके लिए भी आवश्यक हो चला है ।

कार्बराइल (सेविन) की उत्पादन प्रक्रिया

भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने में कार्बराइल के उत्पादन में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है—

1. कार्बन मोनोक्साइड प्लांट—सबसे पहले एक विशेष प्रकार के कोयले (कैलसाइन पेट्रोलियम कोक) को ऑक्सीजन की उपस्थिति में जलाया जाता है । ऐसा करने से कार्बन मोनोक्साइड (CO) बनती है। इसके साथ ही थोड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड भी बनती है । चूँकि कार्बन डाइऑक्साइड पानी में घुलनशील है, इसे पानी में घोलकर अलग कर लिया जाता है। कार्बन मोनोक्साइड पानी में नहीं घुलती । यह एक अत्यधिक विषैली गैस है। यह बड़ी तेजी से जलती भी है। इसी कारण से उत्पादन प्रक्रिया में बची हुई गैस को एक ऊँची मीनार के मुख पर जलाया जाता है। इस मीनार को "फ्लैर टॉवर" कहते हैं ।

2. फॉस्जिन उत्पादन : इस प्रकार से बनी कार्बन मोनोऑक्साइड को क्लोरिन के साथ क्रिया करवायी जाती है। इस रासायनिक क्रिया में इन्हें एक्टिवेटेड कार्बन पर से गुजारते हैं । इस क्रिया से फॉस्जिन का उत्पादन होता है ।

क्लोरिन, नागदा के ग्वालियर रेआन फैक्ट्री से खरीद कर विशालकाय टंकियों में रखी जाती थी । फॉस्जिन श्वसित करने पर अत्यन्त ज़हरीली साबित होती है। इसी गैस को हिटलर ने द्वितीय विश्वयुद्ध में यहूदियों की सामूहिक हत्या के लिए 'गैस चैम्बर' में इस्तेमाल किया था । फॉस्जिन का संग्रह नहीं किया जाता बल्कि इसे मिथाइल आइसो साइनेट (मिक) के उत्पादन के दौरान बनाया जाता है ।

3. मिथाइल आइसो साइनेट (MIC 'मिक') का निर्माण—फॉस्जिन की मोनोमिथाइल एमाइन से क्रिया करवा कर मिथाइल आइसो साइनेट का उत्पादन होता है । इन दोनों को घोलने के लिए क्लोरोफार्म का उपयोग किया जाता है। मोनो मिथाइल एमाइन सामान्य ताप पर एक विषैला द्रव्य है जिसे यूनियन कार्बाइड राष्ट्रीय केमिकल फैक्ट्री, बम्बई से खरीदती थी । इसे भी टंकियों में भर कर रखा जाता था। 'मिक' बनाते समय इसे गरम करना जरूरी होता है इससे कुछ मिथाइल एमाइन भाप में परिवर्तित हो जाता है । यह वाष्प भी काफी विषैली होती है ।

इस प्रक्रिया में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल भी बनता है जिसे रिफाइनरी में अलग करना पड़ता है । कुछ फॉस्जिन भी बिना रासायनिक क्रिया में भाग लिए बच जाती है। इस 'मिक' में 0.02 प्रतिशत तक फास्जिन की मात्रा यदि रहती है तब उसे रहने दिया जाता है । इस प्रकार से यदि 99.5 प्रतिशत शुद्धता की 'मिक' जब बन जाती है तब उसे टंकियों में संग्रहित कर लिया जाता है । यूनियन कार्बाइड में 'मिक' संग्रहण हेतु 40 टन की तीन विशालकाय टंकियाँ हैं । इनमें से एक टंकी हमेशा खाली रखी जाती है ताकि भरी हुई टंकी में अधिक दाब होने पर उसे खाली टंकी में डाला जा सके। ये टंकियाँ जमीन में 30 फुट नीचे रखी गई हैं। 'मिक' सामान्य ताप एवं दाब पर एक बहुत ही जहरीला द्रव है तथा अधिक ताप या दाब पर

कार्बराइल निर्माण की रासायनिक अभिक्रियाएँ

(i) $3C + 2O_2 \xrightarrow{\text{ताप}} 2CO + CO_2$

कोक + ऑक्सीजन → कार्बन मोनोक्साइड + कार्बन डाई आक्साइड

(ii) $CO + Cl_2 \xrightarrow[\text{कार्बन}]{\text{एक्टिवेटेड}} COCl_2$

कार्बन मोनोक्साइड + क्लोरिन → फॉस्जिन

(iii) $COCl_2 + CH_3NH_2 \xrightarrow{\text{ताप}} CH_3NCO + HCl$

फॉस्जिन + मिथाइल एमाइन → मिथाइल आइसो साइनेट + हाइड्रोक्लोरिक अम्ल

(vi) $CH_3NCO + \alpha\text{-naphthol} \rightarrow C_{10}H_7OONHCH_3$

कार्बराइल (सेविन)

एक बहुत ही ज़हरीली गैस। 2 दिसम्बर की रात को भोपाल में करीब एक लाख लोग इसी गैस के शिकार बने थे।

4. कार्बराइल (सेविन) उत्पादन—उपरोक्त प्रकार से बनाई गई 'मिक' को अल्फा नैफथाल के साथ रासायनिक क्रिया करवा कर कार्बराइल बनाया जाता है। इसके लिए पहले अल्फा नैफथाल को कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4) में लगभग एक घंटे तक 50° से. तापमान पर घोला जाता है। नैफथाल के घुल जाने पर धीरे-धीरे 'मिक' को इस घोल में डाला जाता है। 'मिक' को सेविन प्लांट तक ले जाने के लिए उसकी टंकी पर एक निश्चित मात्रा में नाइट्रोजन दबाव दिया जाता है ताकि द्रव्य पाइप में आ जाए। इस रासायनिक क्रिया के लिए ट्राइमिथाइल एमाइन उत्प्रेरक के रूप में उपयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया में गर्मी उत्पन्न होती है इसलिये ताप का नियंत्रण करना जरूरी है। ताप करीब 70° से. पर रखा जाता है। ये 'हीट एक्सचेन्जर' नामक यंत्र से किया जाता है। यदि ताप बढ़ जाए तो कार्बराइल के बजाए कुछ और बन सकता है।

70° से. पर काफी मिथाइल आइसो सायनेट वाष्प उत्पन्न होता है चूँकि एम. आई. सी. 39.1° से. पर वाष्प बन जाता है। यह वाष्प को बेअसर करने के लिए इसे एक कास्टिक सोडा स्क्रबर से निकाला जाता है। इस स्क्रबर में कॉस्टिक सोडा का घोल आने वाली गैस पर गिरता है और गैस क्षारीय बन जाता है।

एम. आई. सी. और नैफथाल की रासायनिक क्रिया से कार्बराइल बनने में करीब 40-45 मिनट लगते हैं। इस के बाद पदार्थ का प्रयोग शाला में परीक्षण किया जाता है। यदि कार्बराइल में .03% तक एम. आई. सी. हो, तो इसे पास कर दिया जाता है। नहीं तो एम. आई. सी. निकाल लिया जाता है। यदि अलफा नैफथाल अधिक हो तो और एम. आई. सी. डाला जाता है। जब प्रयोग शाला का परीक्षण कार्बराइल को ठीक बताता है तो बैच तैयार माना जाता है।

अब 'कार्बराइल स्लरी' (कार्बराइल और कार्बन टेट्राक्लोराइड का एक गूदानुमा मिश्रण होता है) को 'सर्ज टैंक' में एकत्रित किया जाता है। यहाँ से स्लरी पाइपों द्वारा 'फिल्टर' में ले जाया जाता है जहाँ एक कपड़े के फिल्टर द्वारा CCl_4 और कार्बराइल अलग-अलग किए जाते हैं। गीले कार्बराइल को अब 'ड्रायर' के द्वारा सुखाया जाता है और 'ड्रायर' से ये 'डस्ट कलेक्टर' में आता है। यहाँ से मजदूर बोरों में इसे इकट्ठा करते हैं। 'सेविन' यूनियन कार्बाइड का कार्बराइल के लिए ट्रेड मार्क है। सेविन 'टेक्निकल' (शुद्ध) का डस्ट श्वसन, पाचन और स्पर्श से बहुत ही ज़हरीला पदार्थ है। यूनियन कार्बाइड, भोपाल को 5000 टन सेविन (कार्बराइल) बनाने की सरकार से अनुमति थी।

5. कार्बराइल 'टेक्निकल' को अब अलग-अलग ताकत की कीटनाशकों में पैक किया जाता है। यह फॉर्मूलेशन यूनिट में किया जाता है। 'सेविन' के विभिन्न फॉर्मूलेशन इस प्रकार हैं:— 'सेविन' 85 एस. (स्प्रेयबल) 50 डब्ल्यू. पी. (वेटबल पाऊडर) 10 डी (डस्ट) 5 डी., 4 जी. (ग्रेन्यूल) सेविडाल 4-4 जी. सेविमोल 40 एल. वी., टेमिक 10 डी.।

कीटनाशक कारखाना या विष-भण्डार

यूनियन कार्बाइड के भोपाल कारखाने में जिन विषैले पदार्थों का उपयोग होता था, उनके गुण-धर्म इस प्रकार हैं—

1. कार्बन मोनॉक्साइड : सामान्य ताप एवं दाब पर यह एक रंगहीन गैस है। यदि साँस में ली जाने वाली हवा के दस लाख भागों में मात्र नौ भाग इस गैस के हों तो मनुष्य को सर-दर्द और उल्टी-सी होने लगती है। इससे अधिक मात्रा में होने पर मृत्यु भी हो सकती है। यह गैस अत्यधिक ज्वलनशील (तेजी से जलने वाली) है।

2. क्लोरिन : सामान्य ताप एवं दाब पर यह गैस अवस्था में होती है। इसकी थोड़ी-सी मात्रा सूँघने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। अधिक मात्रा में सूँघे जाने पर मृत्यु भी हो सकती है। सन् 1915 में इसे पहली बार रासायनिक युद्ध में उपयोग में लाया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध में यह फॉस्जिन के साथ मिलाकर लोगों को मारने के लिए उपयोग में लाई गई थी। इसकी बू बहुत तेज होती है और यह पानी में घुलनशील है। इसे पेयजल को साफ करने के लिए उचित मात्रा में पानी में अक्सर मिलाया जाता है। अधिक मात्रा होने पर पानी में तेज बदबू आती है।

3. मोनोमिथाइल एमाइन : यह एक रंगहीन गैस या तरल है। इसका वाष्पीकरण—6.8° से. पर होता है। यह पानी में अत्यधिक घुलनशील है। यह अत्यधिक ज्वलनशील भी है। सम्पर्क में आने पर यह मनुष्य की आँख, चमड़ी और श्वसन-तंत्र में बहुत जलन पैदा करता है।

4. फॉस्जिन : यह कम ताप पर तरल होता है किन्तु सामान्य ताप पर रंगहीन या हल्की पीली गैस होती है। मात्र 8.2° से. ताप पर यह वाष्पीकृत हो जाता है। गैस रूप में यह हवा से साढ़े तीन गुना भारी होती है। इस गैस के संपर्क में आने पर आँखें चिलमिलाती हैं। इसको श्वसित करने पर यह अत्यन्त विषैला होती है। हवा के दस लाख भागों में यदि इसका मात्र 0.1 भाग ही मिला हो तो उसे श्वसित करने पर मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है। इस गैस से फेफड़ों पर घातक असर पड़ता है। यह गैस आसानी से नहीं जलती। क्षारीय पदार्थों से रासायनिक क्रिया कराने से फॉस्जिन बेअसर हो जाती है।

5. मिथाइल आइसो साइनेट: सामान्य ताप और दाब पर यह एक रंगहीन तरल है। इसका वाष्पीकरण 39.1° से. पर होता है। यह पानी से बड़ी तेजी से रासायनिक क्रिया करता है और इस क्रिया से गर्मी उत्पन्न होती है। यह पदार्थ अत्यन्त ज्वलनशील भी है।

मनुष्य के लिए थोड़ी-सी मात्रा में भी यह बहुत ही घातक है। हवा के दस लाख भाग में यदि इसके 21 भाग ही मिले हों तब ऐसी हवा को 5 मिनिट से अधिक साँस में लेने पर मौत हो सकती है। इस गैस के स्पर्श में आने पर आँखों में जलन होती है तथा घुटन-सी होने लगती है। यही वह गैस थी जो 2 दिसम्बर की रात भोपाल के वातावरण में फैल गई थी। इस गैस में फॉस्जिन भी थोड़ी मात्रा (0.2-2%) में मिली हुई थी। कॉस्टिक सोडा से क्रिया कराने पर इसे निष्प्रभावी किया जा सकता है।

6. **सेविन (कार्बराइल)** : यह एक सफेद ठोस पदार्थ है। जिसे कीटनाशक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह श्वसन, पाचन और स्पर्श में ज़हरीला होता है। यह 142° से. पर पिघलता है।

यदि किसी व्यक्ति को कार्बराइल का असर हो तो उसे तुरन्त एट्रोपिन देनी चाहिए।

मिथाइल आईसोसाइनेट (MIC)

सामान्य तापमान पर यह रसायन तरल स्थिति में ही होता है। 39.1° से. पर यह उबल जाता है। यह विश्व में सबसे अधिक ज़हरीले रसायनों में से एक है। हवा में इसकी कुछ मात्रा ही घातक सिद्ध होती हैं।

'मिक' गैस के साथ मनुष्य पर बहुत प्रयोग नहीं हुए हैं। पर जो कुछ प्रयोग हुए हैं उनके आधार पर देखा गया है कि 1 से 5 मिनटों की अवधि में—

(i) हवा के 10 लाख अंशों में 'मिक' के 2 अंश होने से आँख, नाक और गले में जलन।

(ii) हवा के 10 लाख अंशों में 'मिक' के 20 अंश होने से आँख, नाक, श्वास नली में असह्य जलन, आँख में ज़ख्म, साँस फूलना, फेफड़ों में पानी भर जाने की संभावना।

(iii) इससे अधिक मात्रा में 'मिक' गैस के कारण तत्काल मृत्यु हो सकती है। मृत्यु न होने पर भी गैस से पीड़ित व्यक्ति दृष्टिहीन हो सकता है और उम्र भर दमे से पीड़ित रह सकता है।

पानी के साथ 'मिक' गैस अत्यधिक क्रियाशील है। इस अभिक्रिया से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) गैस बनती है जिसके दबाव के कारण धातु की टंकी तक फट सकती है।

'मिक' को निष्प्रभावित करने का सरल तरीका भी यही है कि उसकी पानी से प्रतिक्रिया करवा दी जाए। आँखों की सुरक्षा के लिए उन्हें पानी से अच्छी तरह धो लिया जाए और शरीर को गीले कपड़े से ढँक लिया जाए। परन्तु पानी के साथ 'मिक' की अभिक्रिया के दौरान कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ (मिथाइल अमीन) भी बनते हैं जिनसे आगे कुछ कैंसरकारी यौगिक उत्पन्न हो सकते हैं (मिथाइल नाइट्रोसो अमीन)। ऐसी शंका के कारण ही वैज्ञानिकों ने विशेष ज़ोर दिया है कि भोपाल के पानी का सूक्ष्म परीक्षण किया जाए। कुछ वैज्ञानिक इस जाँच को स्वयं करवा भी रहे हैं और इससे जुड़े अन्य शोधकार्य में संलग्न हैं। 'मिक' का पेड़-पौधों पर प्रभाव, पर्यावरण पर इसके दूरगामी असर —इन सब बातों पर विस्तृत वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है।

कारखाने के अन्दर (अ) सुरक्षा ?

जिस फैक्ट्री में इस तरह के अत्यन्त विषैले पदार्थ इस्तेमाल होते हों तो ऐसी फैक्ट्री को उत्पादन की अनुमति पाने के लिए कुछ न कुछ उपाय तो करना ज़रूरी है। ऐसी स्थिति में 3 तरह के सुरक्षा यंत्र होते हैं। (1) जो खतरे की सूचना दे, (2) जो कारखाने में काम करने वालों की सुरक्षा के लिए हो और (3) जो कारखाने के आसपास रहने वाले लोगों के बचाव के लिए हो। भोपाल की दुर्घटना के लिए पहले और तीसरे तरह के उपाय सबसे महत्वपूर्ण थे।

* खतरे की सूचना देने के लिए टंकियों में ताप और दबाव के सूचक लगे रहते हैं। दोनों में से कोई भी यदि बढ़ोतरी दिखाए तो वाल्व या टंकी फटने की आशंका होती है। 2 दिस. की रात को जिस टंकी से गैस छूटी, उसका ताप सूचक खराब था। उसी टंकी में बढ़ते हुए दबाव की ओर ध्यान नहीं दिया गया जब तक कि दबाव काबू के बाहर नहीं बढ़ गया। एक कल्पना तो यह भी है कि सुरक्षा वाल्व 8 या 10 पाऊँड प्रति वर्ग इंच के दबाव पर सेट होता है और इस दबाव के कारण यह वाल्व 12.30 बजे रात के काफी पहले फट चुका था। 12.30 और 1 बजे रात के बीच में किसी रासायनिक प्रक्रिया के कारण दबाव बहुत ही तेजी से अत्यधिक बढ़ गया जिसके कारण 40 टन गैस करीब 15-20 मिनट में छूट गई।

* ताप और दबाव के बढ़ने को रोकने के लिए उन टंकियों को ठंडाई प्रदान करने के लिए रेफ्रिजरेशन यूनिट होता है। एम. आई. सी. या मिक के भण्डार को ठण्डा रखने के लिए ऐसी ही एक इकाई जिसे 30 TR (टन रेफ्रीजिरेशन) कहते हैं, लगी हुई थी। पर यह इकाई साल भर से बन्द पड़ी थी।

* जब ऐसी कोई विषैली गैस की रिसन हो तो उसे वातावरण में छोड़ने के पहले उन्हें निष्प्रभावी बनाना ज़रूरी होता है, नहीं तो आसपास की बस्तियों को खतरा रहता है। यूनियन कार्बाइड भोपाल के लिए मुख्य रूप से ऐसे दो उपाए थे। जहाँ भी विषैली गैसों का उत्पादन, उपयोग या भण्डारण होता है वहाँ से एक पाइप एक कास्टिक स्क्रबर में जाती है। यहाँ पर कास्टिक सोडा (जो क्षारीय है) का घोल रिसी हुई गैस पर गिरता है।

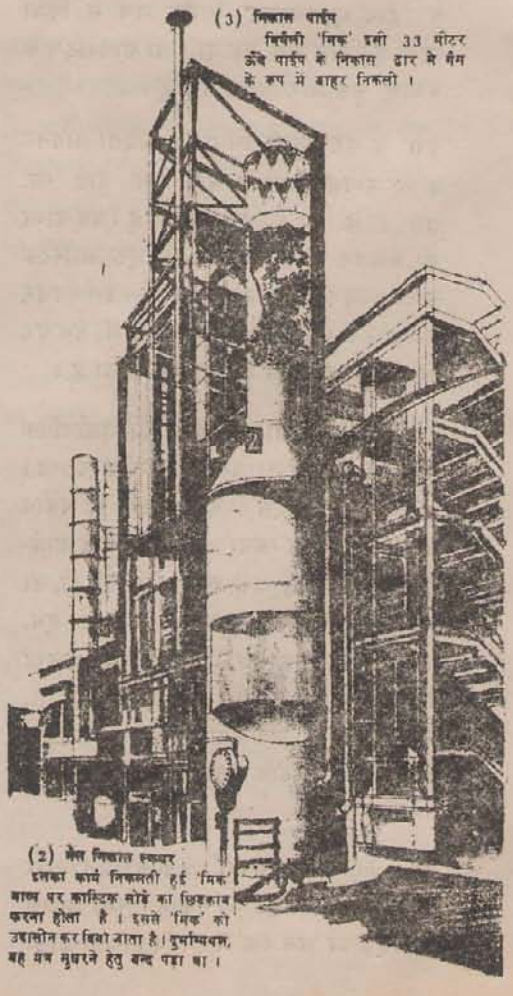

(3) निकास पाईप
विषैली 'मिक' इसी 33 मीटर ऊँचे पाईप के निकास द्वार से गैस के रूप में बाहर निकली।

(2) गैस निकास स्क्रबर
इसका कार्य निकलती हुई 'मिक' वाष्प पर कास्टिक सोडे का छिड़काव करना होता है। इससे 'मिक' को उदासीन कर दिया जाता है। दुर्भाग्यवश, यह यंत्र सुधरने हेतु बन्द पड़ा था।

इस स्क्रबर में कई जगह मुड़ी हुई छेद पाइप होती है जिसमें से गैस ऊपर जाती है और कास्टिक नीचे गिरता है। रासायनिक क्रिया होती है और गैस निष्प्रभावी हो जाती है। यूनियन कार्बाइड में इस्तेमाल होने वाली सभी गैसें क्लोरिन, मोनोमिथाइल अमाईन, फॉस्जिन और मिथाइल आइसोसाइनेट कास्टिक से निष्प्रभावी की जा सकती है। हर एक प्लांट या इकाई में एक 'कास्टिक सोडा स्क्रबर' जिसे 'वेन्ट गैस स्क्रबर' भी कहते हैं, होता है। लेकिन कितनी गैस यह बेअसर कर सकता है, उसकी भी एक सीमा होती है। जैसे-जैसे और गैस से क्रिया होती है, कॉस्टिक का घोल कमजोर होता जाता है, इसमें और कास्टिक सोडा डालना पड़ता है। **2 दिस. की रात को यह स्क्रबर, जो कम से कम कुछ लोगों की जान बचा सकता था, सुधरने और साफ होने के लिए बन्द पड़ा था।**

* चूंकि स्क्रबर की क्षमता निश्चित है तो यदि रिसन अधिक मात्रा में हो और स्क्रबर पूरी गैस को निष्प्रभावी न कर पाए इसलिए स्क्रबर से फ्लैर टावर के लिए एक पाइप जाती है। फ्लैर टावर पर कार्बन मोनॉक्साइड की लौ हमेशा जलनी चाहिये (जब भी कारखाने में उत्पादन हो रहा हो या कोई भी विषैली गैस भण्डार में हो) **पूरे कारखाने में केवल एक कॉमन फ्लैर टावर है। लेकिन दुर्घटना की रात मिक के कास्टिक स्क्रबर से फ्लैर टावर को पाइप सुधार के लिए निकली पड़ी थी और लौ भी बुझी हुई थी।** मिक को एक ही रास्ता मिला वह, 4 इंच चौड़ी पाईप से सीधे हवा में निकल गई और हज़ारों लोगों का अपने विषैले हाथों से गला घोट दिया।

* इनके अलावा, चूंकि मिक पानी से क्रिया कर निष्प्रभावी हो जाता है, पानी की जबरदस्त बौछार से मिक को बेअसर बनाया जा सकता है। लेकिन पानी की मात्रा मिक से 9 गुना अधिक होनी चाहिए। उस मौत की रात को मिक जमीन से 33 फुट ऊपर फिक रही थी। कारखाने में जो पानी फेंकने के साधन थे, वे पानी इतना ऊँचा नहीं फेंक पाते थे। केवल 3 पम्प चालू कर पाए थे जो 40 टन मिक को निष्प्रभावी करने के लिए पर्याप्त नहीं थे।

* एक तीसरा टैंक खाली था जो रिसन वाले टैंक के साथ एक वाल्व द्वारा जुड़ा हुआ था। वाल्व खोलकर कुछ एम. आई. सी. उसमें छोड़ी जा सकती थी, जिससे कि रिसन टंकी में दबाव कम हो जाए। लेकिन जब तक रिसन का पता चला दबाव इतना बढ़ चुका था कि वाल्व खोलने पर दोनों टंकियों के फटने का खतरा था।

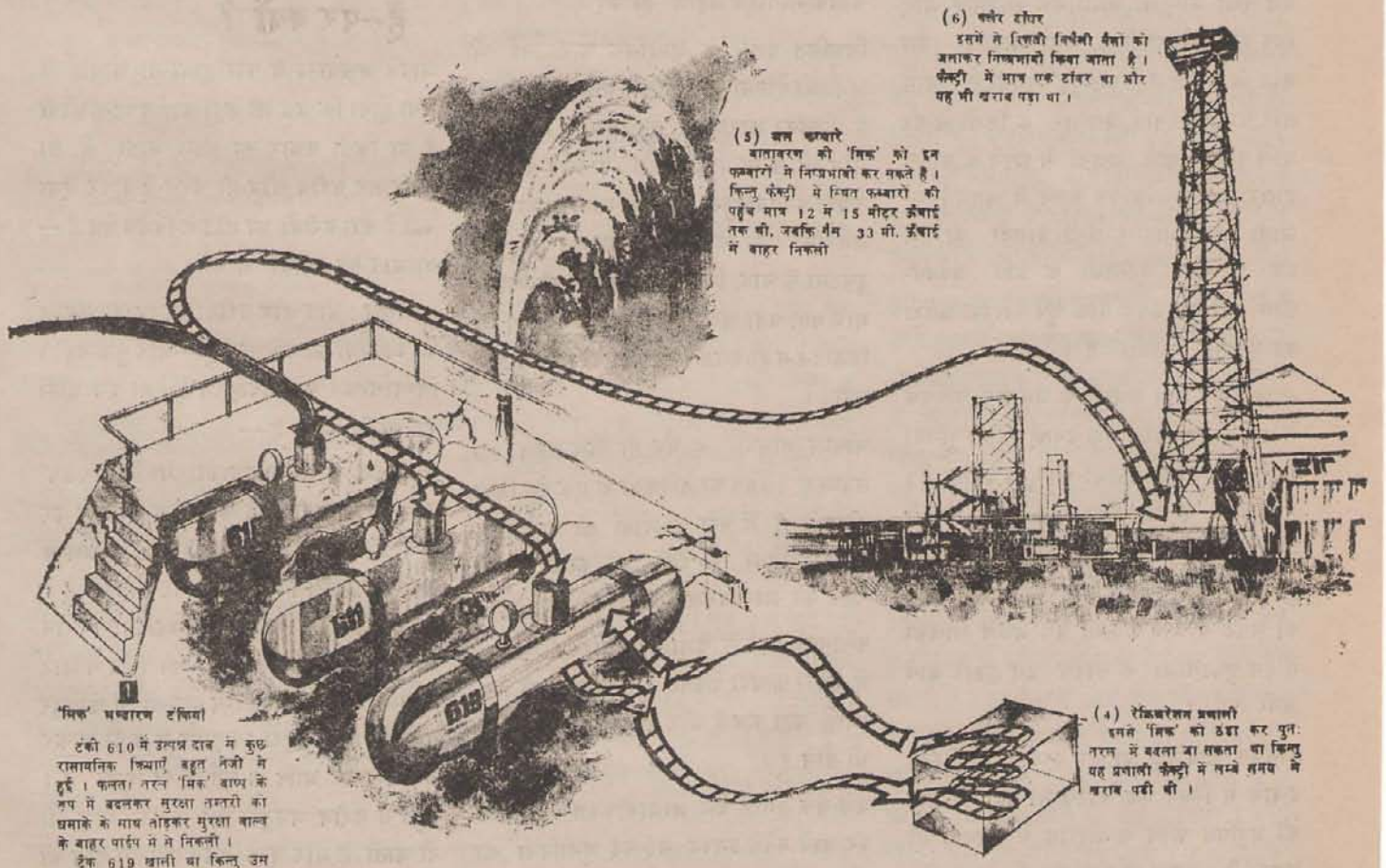

इन तथ्यों से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं:-

(1) यूनियन कार्बाइड ने सभी सुरक्षा साधनों को एक साथ निष्क्रिय कैसे बना दिया? खासकर जब इतने विषैले पदार्थ उनके भण्डार में थे और कार्बराइल का उत्पादन चालू था?

(2) सूचक यंत्र बेकार कैसे पड़े थे? सुरक्षा स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिए उद्योग इन्सपेक्टर का कार्यलय है। क्या इस कार्यालय को यूनियन कार्बाइड की सुरक्षा स्थिति का सही अन्दाज था? यदि था तो उन्होंने कारखाने पर कार्यवाही क्यों नहीं की?

दुर्घटनाएँ अनेक--सबक एक

औद्योगिक दुर्घटनाओं के इतिहास में भोपाल यूनियन कार्बाइड की दुर्घटना ही विश्व में सबसे बुरी मानी जाती है। यही कारण है कि इसके बारे में इतना लिखा जा रहा है। वैसे देखा जाए तो औद्योगिक दुर्घटनाएँ आए दिन ही होती रहती हैं, मगर भोपाल गैस कांड के सामने यह 'छुट-पुट' लगती हैं। आम तौर पर ये घटनाएँ अखबार के किसी अन्दर वाले पन्ने पर छोटे अक्षरों में छपने के कारण हमारा ध्यान आकर्षित करने में असमर्थ रह जाती हैं। भोपाल जैसी त्रासदी ही हमें इन 'छुट-पुट' घटनाओं के प्रति संवेदनशील बना कर इनके पीछे छुपे व्यापक खतरों का एहसास दिलाती हैं।

अखबारों में छपी ख़बरों के अनुसार पश्चिम से खरीदी गई कीटनाशक दवाएँ तीसरी दुनिया में हुई बहुत-सी दुर्घटनाओं का मुख्य कारण है। उदाहरण के लिए सन 1982 में तीसरी दुनिया में तीन लाख पचहत्तर हजार ऐसी दुर्घटनाएँ घटीं, जिनमें लोग कीटनाशक ज़हर की चपेट में आए। उसी वर्ष अकेले श्रीलंका में इन दुर्घटनाओं के कारण दस हजार जाने चली गईं।

यूनियन कार्बाइड का ही बम्बई के चेम्बूर इलाके में स्थित एक कारखाना वहाँ की हवा को प्रदूषित करने के आरोप में बदनाम हो चुका है। इसके अलावा बम्बई के राष्ट्रीय केमिकल्स और फर्टिलाइज़र्स एवं तारापुर परमाणु पावर स्टेशन के रिकार्ड भी प्रदूषण फैलाने के संदर्भ में बहुत बुरे रहे हैं। बिड़ला की 'जुआरी एगरो (कृषि) केमिकल्स' ने गोवा के कई गाँवों में बड़ी तबाही मचाई थी जिस का कारण कारखाने से बहिष्प्रवाही में निकलता आरसेनिक (arsenic) था। बिड़ला ही की एक फैक्ट्री 'ग्वालियर रेयान्स' ने केरल की चेलियार नदी को जहरीला बनाया और मध्यप्रदेश में इसी नाम की दूसरी फैक्ट्री ने नागदा के वातावरण को प्रदूषित किया। पर्याप्त वैधानिक कानून न होने के कारण इन कंपनियों के प्रबंधक प्रदूषण फैलाने के आरोपों से आसानी से बच निकले।

सात मई 1983 को लखनऊ के ऐशबाग स्थित कीटनाशक बनाने के कारखाने से डेढ़ टन वज़न वाले क्लोरीन गैस सिलिंडर लीक कर जाने से आसपास के इलाके के दो सौ से अधिक नागरिक बेहोश हो गए।

विकसित देशों के आधुनिक कारखानों में अभी भी ऐसे नए खतरों का पता चलता रहता है, जिनका कारखाना बनते समय किसी को ज्ञान भी न था। उदाहरण के लिये परमाणु उद्योग को बिलकुल सुरक्षित माना जाता था। अमेरीका के थिरी-माइल-आइलेंड पर घटी दुर्घटना के बाद, जिसमें करीब तीन सौ व्यक्ति मारे गए, पता चला कि परमाणु उद्योगों की डिज़ाइन में ही ग़लती थी जिसको फिर सुधारा गया।

भोपाल त्रासदी के चंद ही दिन पहले 19 नवम्बर 1984 को मेक्सिको के एक गैस डिपो की दुर्घटना में चार सौ लोगों की जाने गईं। तीसरी दुनिया के देशों को काफी सतर्क रहने की आवश्यकता है। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यहाँ के देशों में कारखाने खोलने में अपना फायदा देखती हैं। मज़दूरों की तनख्वाहें यहाँ कम हैं और प्रदूषण संबंधी नियम भी ढीले हैं।

जैसे-जैसे हमारे देश औद्योगीकरण के रास्ते पर आगे बढ़ेंगे इनको नई-नई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। औद्योगीकरण रोक देने से तो शायद हल नहीं निकलेगा। समस्याओं का निराकरण करना होगा। औद्योगिक दुर्घटनाओं के अध्ययन से साफ पता चलता है कि इनमें से अधिकतम को कारखाने के प्रबंधकों और उन पर नियंत्रण रखने वालों (जिनमें सरकार के पर्यावरण विभाग भी शामिल हैं) की सतर्कता से रोका जा सकता था।

एक और ज़रूरी बात समझने की यह भी है कि यद्यपि हम कारखानों में एक्सीडेंट होने की संभावना को पूरी तरह से रोक न भी पायें तो भी ज़ख्मी होने या मरने वालों की संख्या तो बहुत कम कर ही सकते हैं। ऐसी दुर्घटनाओं से छुटकारा पाने का सबसे बुनियादी तरीका यही है कि किसी भी प्रकार के ख़तरनाक कारखानों को आबादी से बिलकुल दूर रखा जाए। भोपाल में इस तथ्य को ठुकरा दिया गया था जिसका नतीजा हम सभी देख रहे हैं।

हमेशा गरीब ही मारे जाते हैं--पर क्यों?

आपने अखबारों में पढ़ा होगा या लोगों से सुना होगा कि जब भी कहीं कोई दुर्घटना होती है या किसी प्रकार का संकट आता है, तो ज्यादातर ग़रीब लोग ही मरते हैं। पर ऐसा क्यों? क्या ग़रीबों को मौत से विशेष प्रेम है--या मौत को ग़रीबों से?

दरअसल, मौत और ग़रीबी का रिश्ता समाज की व्यवस्था का परिणाम है--और कुछ नहीं। निम्नलिखित कुछ उदाहरण हैं, जो इन बातों की पुष्टी करते हैं--

मध्यप्रदेश के अनेक इलाकों में 'लेथिरिज़म' नाम की बीमारी कई लोगों के स्वास्थ्य पर धावा बोले हुए है। यह बीमारी खेसरी दाल में उपस्थित ज़हरीले पदार्थ के कारण होती है। खेसरी एक सस्ती दाल है जिसे ज्यादातर गरीब लोग ही खाते हैं। पैसे वालों की पहुँच में और बहुत-सी दालें हैं। बहुत-से इलाकों में खेतिहर मज़दूरों को मज़दूरी रुपए-पैसे में न दी जाकर अनाज-दाल आदि के रूप में दी जाती है। बहुत से ग़रीब मज़दूरों को खेसरी दाल भी दी जाती है और लम्बे समय तक इस दाल को खाने से उनको 'लेथिरिज़म' का शिकार होना पड़ता है। इस बीमारी में मरीज़ के पैर एवं

शरीर धीरे-धीरे बेकार हो जाते हैं। लेथिरिज़म कई लोगों को विकलांग बना देती है।

देश के अनेक इलाकों में कारखानों की गन्दगी बह कर नदियों में मिल जाती है। इससे पानी प्रदूषित हो जाता है और बहुत बार तो ज़हरीला भी हो जाता है। जलीय जन्तु जैसे मछलियाँ एवं पौधे मरने लगते हैं। पानी किसी काम का नहीं रहता। पैसे वाले लोग तो अपने पीने के लिए गहरे कुए खुदवा लेते हैं, पर गरीब लोगों को तो उसी नदी के गन्दे (प्रदूषित) पानी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। धीरे-धीरे गन्दा पानी पीते रहने से शरीर-क्षय होने लगता है तथा उसमें कई बीमारियाँ पलने लगती हैं। कई कारखाने शहर के छोर पर बनाए जाते हैं। इन कारखानों के मजदूरों की समस्या होती है कि वे कहाँ रहें? शहर में मकान खरीदने, बनाने या किराए पर लेने के लिए इनके पास

पैसा नहीं होता। इसलिए ये लोग ऐसी जगहों पर जाकर अपनी झुग्गी-झोपड़ी बना लेते हैं जहाँ और कोई रहना पसन्द नहीं करता। शहर के आबादी वाले इलाके में अगर ये लोग अपनी झुग्गी-झोपड़ी बनाते हैं तो भगा दिए जाते हैं। पैसे वाले भले घर (?) के लोगों को इन ग़रीब गन्दे लोगों का पास में रहना मंज़ूर नहीं होता। फिर शहर के बीच की जमीन बहुत कीमती होती है—पैसे वाले लोग उस पर इमारतें बना कर मालामाल होना चाहते हैं। तो पुलिस के आदमी ग़रीबों

(शेष पृष्ठ 14 पर)

पाठक लिखते हैं

अंक 14 (सितम्बर, 1984) में छपे "भाषा व भाषा शिक्षण : कुछ विचार" के संदर्भ में दो पाठकों से प्राप्त प्रतिक्रियाएँ यहाँ प्रकाशित हैं। दोनों ने ही लेख के संदर्भ में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न सामने रखे हैं। उम्मीद है और पाठक भी उक्त लेख पर अपने विचार भेजेंगे।

बहुत ज्यादा प्रश्न.....

मेरी समझ में लेख में एक साथ बहुत ज्यादा प्रश्न उठा दिए हैं, जिनकी पड़ताल अलग-अलग दिशाओं में ले जाती है। जैसे भाषा और बोली का मामला एक ऐसी बहस है जिसमें जाए बगैर भी भाषा-अध्यापन सुधार कार्यक्रम चलाया जा सकता है।

इसी तरह पाठ्य पुस्तकों वाला मामला पूरी कोशिश को एक ऐसी दिशा में ले जाता है, जहाँ नए ढंग से सोचने-काम करने का महत्त्व नहीं रह जाता। भाषा के मानकीकरण वाली बात भी स्कूल में भाषा के स्थान और पाठ्यपुस्तक की समस्याओं से सीधे जुड़ी हुई नहीं है—कम से कम मैं ऐसा मानता हूँ।

ये बातें भाषा विज्ञान के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन सकती हैं, भाषा की शिक्षा-विशेषकर पढ़ने और लिखने के कौशल-के सिलसिले में क्रांतिकारी ढंग से सोचने की शुरूआत इस बिन्दु से नहीं हो सकती। ये बहसें हमें व्यर्थ में उलझाती हैं। असली मुद्दा यह है कि स्कूल में भाषा संबंधी कौशलों की शिक्षा को बाल केंद्रित पाठ्यक्रम से कैसे जोड़ा जाए जिससे भाषा की पढ़ाई बच्चे की मुक्ति और विकास का साधन बने, परतंत्र बनाने वाली न बने।

—कृष्णकुमार
नई दिल्ली

असहमति के बिन्दु

"भाषा और भाषा शिक्षण : कुछ विचार" लेख पढ़ा। लेखकों ने लिखा है कि "जिस प्रकार उस बोली को बोलने वालों के समाज व संस्कृति को समझने के लिए उनकी बोली ही एकमात्र सहारा है। उसी प्रकार बोली को समझने के लिए बोलने वालों के समाज और उनकी संस्कृति को समझना आवश्यक है।" (पृष्ठ 5 : कालम 2, अंतिम पैरा)।

मेरे ख्याल से सिंधु-घाटी-सभ्यता की बोली/भाषा को समझे बिना भी उसकी सभ्यता, संस्कृति, समाज आदि को समझा जा सका है। जबकि वह तो एक ध्वस्त सभ्यता थी। अतः बोली को "एकमात्र" सहारा कहना कहाँ तक उचित है ?

आगे लेखक लिखते हैं "बोली/भाषा जीवन मूल्यों व संस्कृति से प्रभावित होती है और इसीलिए एक ही स्थान पर अलग-अलग वर्ग के लोगों की बोली में भी अंतर होगा।" (पृष्ठ 5, कालम 3, पैरा 1)

मेरा मत है कि अलग-अलग वर्ग के लोगों की बोली में अन्तर नहीं होगा। केवल कुछ शब्द-मात्र और उनके प्रयोग के ढंग में अन्तर होगा। यदि एक ही स्थान के अलग-अलग वर्ग के लोगों की बोली में अन्तर होगा, तो क्या अलग-अलग क्षेत्र के एक ही वर्ग के लोगों (यदि उन क्षेत्रों की भाषा या बोली एक ही है) की भाषा में समानता होगी ? यदि यह बात मान भी ली जाये तो फिर क्या वर्ग--विभेद तोड़ने में एक भाषा महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं करेगी ?

लेखकों ने लिखा है कि "आमतौर पर तो शालाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा का दफ्तरी कामकाज व शालाओं की चार दीवारी के बाहर बहुत कम उपयोग होता है।" (पृष्ठ 5, कालम 3, पैरा 2)

इस पर मेरा सवाल है आप किसे ठीक समझते हैं—दफ्तर की भाषा विद्यालय में पढ़ाई जानी चाहिए या विद्यालय की भाषा में दफ्तर का कामकाज होना चाहिये ? (यदि विद्यालय में आपके अनुसार ही भाषा शिक्षण हो तब ?)

इसके व्यावहारिक पहलू पर भी आपने अवश्य ही विचार किया होगा। (ऐसा भी संभव है कि एक दफ्तर के क्षेत्र में एक से अधिक भाषाएँ/बोलियाँ बोली जाती हों।)

भाषा को सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में देखते हुए लेख में कहा गया है कि "क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आज की सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थिति में यह आवश्यक है कि बच्चे किताबों और अखबारों में लिखी बात को पूरी तरह समझें ? क्या यह समाज में परिवर्तन लाने के लिए जरूरी नहीं है ?" (पृष्ठ 6, कालम 1, पेरा 1)

किन्तु इसके पहले भी जरूरी यह है कि अखबार या तो उसी भाषा में छापे जाएँ (जो भाषा उस क्षेत्र के लोग समझते हैं) या उस भाषा में अनुवाद हो। अनुवाद के लिए दोनों भाषाओं की शब्दावली समृद्ध होनी चाहिए। वैसे अनुवाद में मूल भाव नहीं आ पाते और उसमें अनुवादक के विचार अधिक प्रधान रहते हैं।

इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण पहलू इसमें जुड़ा हुआ है। समाज में परिवर्तन लाने के लिए अखबार में छपे विचार महत्त्वपूर्ण हैं। आज अनेक पत्र-पत्रिकाएँ ऐसी प्रकाशित हो रही हैं, जिनकी भाषा अनेक लोग समझते हैं और उनमें छिपे विचार भी समझते हैं। किन्तु उनमें परिवर्तन लाने वाले विचारों का ही अभाव है। यदि उनमें वर्तमान सामाजिक विषमता, शोषण आदि का जिक्र ही नहीं होगा, तो क्या केवल भाषा समझ लेने से बदलाव आ जायेगा ?

एक बात और कहना चाहूँगा। छोटी उम्र में भाषा सीखने की क्षमता सर्वाधिक रहती है। उम्र के बढ़ने के साथ-साथ यह क्षमता क्रमशः धीरे-धीरे घटती जाती है। भाषा सिखाने में इस क्षमता का उपयोग किया जाना चाहिए।

व्यापक स्तर पर संवाद के लिए यदि कोई भाषा सिखानी है तो उसके लिए जितनी देर होगी, उतनी ही कठिनाई होगी ।

राष्ट्रीयता के लिए भी भाषा एक संवेदनशील पहलू है । क्या इस प्रकार अनेक भाषाई वर्ग नहीं बना देंगे ? आगे चलकर भाषाई सहिष्णुता कैसे पैदा कर पायेंगे ?

यदि इसकी आवश्यकता महसूस नहीं करते हैं, तो उनमें इस आधार पर अलग पहचान बनी रहेगी, जिसके आधार पर वर्गभेद रहेगा ।

पाठ्य-पुस्तकों के लेखन की व्यावहारिक दिक्कतें, मातृभाषा से व्यापक स्तर की भाषा सिखाने के लिए गीयर बदलने की प्रणाली (जिसके कल-पुर्जे भारतीय होंगे) आदि अनेक प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर मैं व्यापक चर्चा करना चाहूँगा ।

–दीनानाथ शर्मा, इन्दौर

भाषा शिक्षण : कुछ और विचार

भाषा शिक्षण में विषय रुचिपूर्ण हों तथा सरल भाषा हो तो शिक्षा का स्तर वर्तमान से अच्छा हो सकता है । यूं तो आजकल भाषा विकास के लिए कई कदम उठाए जा रहे हैं किन्तु बच्चों के लिए जमीन तैयार करने में उनका कितना महत्त्व है यही हमारे समक्ष विचार करने का केन्द्र बिन्दु है । वर्तमान में कौनसी कमियाँ हैं और वे दूर कैसे की जा सकती हैं ।

भाषा में सिर्फ उसकी अपनी भाषा के शब्द होना चाहिए या अन्य भाषाओं के शब्दों का भी उपयोग किया जा सकता है । यह प्रश्न भी महत्त्व का है । इस संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि उस दूसरी भाषा के शब्द की उपयोगिता कितनी है । यदि उस शब्द से हमें थोड़ा भी लाभ हो रहा है तो बेहिचक उसे अपनी भाषा में प्रयुक्त किया जा सकता है । इस प्रकार के शब्दों को जोड़ने से भाषा समृद्ध होगी तथा अपनी बात को अधिक उपयुक्त ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकेगा ।

कुल मिलाकर भाषा विकास के लिए भाषा शिक्षण में कुछ नए कदम उठाना चाहिए जिसमें बालकों को भाषा का महत्त्व समझाया जाना चाहिए । बच्चों के स्तर की बातें हों तथा रुचिकर विषय हों जिससे उनका ज्ञान भी बढ़े और विकास भी हो । किताबी ज्ञान को अंतिम न माना जाए । बच्चों के साथ मिलकर अंतरंग बातचीत के माध्यम से ऐसा संभव है । भाषा का स्तर केवल भाषा के अध्याय में ही नहीं बल्कि, अन्य विषयों में भी सुधारा जाना चाहिए । (चूंकि हमारी शिक्षा का माध्यम हिन्दी है अतः हर विषय में हिन्दी का महत्त्व है) ।

शिक्षा का कार्य केवल अध्यापकों का नहीं है । असली ज्ञान उन्हें घर से प्राप्त होता है, अतः माता-पिता का भी कुछ कर्त्तव्य बनता है । भाषा शिक्षण की समस्या कुछ विशेष लोगों की जिम्मेदारी नहीं बल्कि विशाल स्तर पर फैली हर नागरिक की समस्या है । हमें उसी स्तर पर इसका विचार करना चाहिए ।

–राजेश श्रीवास्तव
होशंगाबाद

❖

अन्य पत्र

दाम बढ़ गये हैं

महोदय,

होशंगाबाद विज्ञान का सितम्बर 1984 का अंक 14 प्राप्त हुआ । वह भी एक रुपये में । क्या विद्यार्थी के लिए एक रुपया और शिक्षकों के लिए मुफ्त में ? हमारे स्कूल के शिक्षक लोग होशंगाबाद विज्ञान में लिखा मूल्य (विद्यार्थी पचास पैसा) को स्याही से मिटाकर उसे एक रुपये में विद्यार्थियों को दे रहे हैं । जबकि हर अंक पचास पैसे में खरीदते रहे हैं । स्कूल में प्रयोग नहीं कराये जाते और परिभ्रमण पर जाना तो एक स्वप्न है ।

एक छात्र,
कक्षा 8 वीं "ब"
शास. उच्च. माध्य. शाला, खिरकिया

प्रिय दोस्त,

तुम्हारी चिट्ठी मिली । होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका की सहयोग राशि अब सभी के लिए एक रुपया कर दी गई है । इसीलिए सितम्बर का अंक 14 भी तुम्हें एक रुपये में मिला । इस अंक में हमारी गलती से (विद्यार्थी पचास पैसा) लिखा रह गया था । अतः उसे हमने ही स्याही से मिटा दिया था । तुम्हारे शिक्षक ने तुमसे जो एक प्रति का एक रुपया लिया वह सही है । तुमने जानना चाहा है कि क्या यह पत्रिका विद्यार्थी को एक रुपया और शिक्षकों को मुफ्त में ! नहीं भाई, शिक्षक को भी मुफ्त में नहीं मिलती । वे भी तुम्हारी तरह इसकी सहयोग राशि एक रुपया देकर ही खरीदते हैं । पत्रिका में पचास पैसा स्याही से मिटाकर एक रुपया तुमसे लिया गया । तुम्हें यह बात गलत लगी, और तुमने सच्चाई जानने की कोशिश की । यह एक अच्छी आदत है । उम्मीद है जहाँ कहीं भी तुम्हें गलत बात नजर आये तुम सच्चाई का पता लगाओगे और सबके सामने सच्चाई को रखोगे ।

दूसरी बात कि तुम्हारे स्कूल में प्रयोग नहीं होते और परिभ्रमण तो एक स्वप्न है । इस संबंध में तुम अपने प्राचार्य से मिलकर अपनी समस्या हल कर सकते हो । तुम्हारी शाला के प्राचार्य तो बहुत सक्रिय और परिश्रमी व्यक्ति हैं । यदि तुम उन्हें अपनी समस्या बतलाओगे तो वे जरूर तुम्हारी मदद करेंगे ।

–सम्पादक

❖

विज्ञान क्या है?

युवा इंजीनियरों का एक समूह यह ज्ञात करने चला कि उनके वैज्ञानिक ज्ञान का लाभ जरूरतमन्द व्यक्तियों को हो सकता है या नहीं? आत्मविश्वास व जोश से ओतप्रोत यह समूह, गाँवों में जाकर यही जान पाता है कि व्यक्तियों को पढ़ाने से पहले अभी उन्हें स्वयं को बहुत कुछ सीखना है। उन्होंने पाया कि चाहे कैसी भी समस्या हो (यहाँ तक कि तकनीकी भी), उसका हल वहाँ की सामाजिक व मानवीय वातावरण से ही प्राप्त हो सकता है। अतः कुछ करने से पहले वहाँ के मानवीय पहलुओं को समझना और ग्रहण करना आवश्यक होगा।

यहाँ पर उसी समूह की कहानी कही जा रही है जो विज्ञान द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु स्वयं अपनी ही गलतियों द्वारा लड़खड़ा गया।

ग्यारह वर्ष पहले कोयना में एक भूकंप आया था। बहुत-सी इमारतें गिर गयीं तथा प्रसिद्ध कोयना बाँध में दरार पड़ गयी। भूकंप ने दिखाया कि आदमी इस प्रकार की प्राकृतिक विपत्ति का सामना करने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं है। विज्ञान का काम है आदमी को बुद्धिमान बनाना। भूकंप का अर्थ यह हुआ कि हम लोगों को इस प्रकार की इमारतें बनानी चाहिये, जिनके ऊपर भूकंप का असर न हो। हम लोगों ने इसी प्रकार की एक इमारत का नक्शा बनाया तथा कोयना जाकर इस प्रकार की एक इमारत भी बनायी। इसका खूब प्रचार भी हुआ। लेकिन हम लोग इस काम की उपयोगिता के बारे में विचार करना भूल गये। यह विचार हमको बहुत बाद में आया। हम सभी लोग धीरे-धीरे अपनी गलतियों से सीखते हैं। इस छोटी-सी घटना से इस प्रकार हम लोगों ने "विज्ञान की उपयोगिता" के बारे में सोचना सीखा। यह जरूरी नहीं है कि हम अपनी गलतियों से ही सीखते हैं। हम दूसरे लोगों के अनुभव तथा गलतियों से भी सीख सकते हैं। इस घटना के "हम" हमेशा वही नहीं रहे हैं "हम" बदलते रहे हैं। लेकिन सीखा हुआ ज्ञान तथा अनुभव बढ़ता रहा है।

हम कोयना में किये अपने काम में इतने उत्साहित हुए कि अगले वर्ष पूना के नज़दीक एक गाँव में विकास कार्य करने पहुँचे गये। हमने सोचा कि जब हम ऐसी इमारत बना सकते हैं कि जिस पर भूकंप का कोई असर नहीं पड़े, तो इन अज्ञानी ग्रामीणों को खेती-बाड़ी में विज्ञान द्वारा की गई प्रगति के बारे में जरूर ही बता सकते हैं। हम लोगों ने खाद, कीटनाशक दवाओं तथा ज्यादा पैदावार देने वाली खेती के बारे में बहुत जानकारी इकट्ठी की तथा इस जानकारी के साथ गाँव में पहुँचे। हम लोगों ने सोचा था कि किसान भाई हम लोगों का भरपूर स्वागत करेंगे। लेकिन पहले तीन दिन में ही हमारा भ्रम दूर हो गया। जितना हम किसान लोगों को सिखा सकते थे वह लोग उससे ज्यादा जानते थे। इसके अलावा किसान लोग बाजार में बदलती हुई कीमतों, मौसम की अस्थिरता इत्यादि के बारे में भी बहुत ज्यादा जानते थे। यह हम लोगों की पहली हार थी। प्रश्न उठा कि क्या कारण है कि तकनीकी ज्ञान उपलब्ध होते हुए भी लोग उसका इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन वह समय प्रश्न पूछने का नहीं था, बल्कि अपना आत्म-विश्वास बढ़ाने के लिये कुछ काम करने का था। अभी भी चार-दिन बाकी बचे थे। हम लोगों ने गाँववासियों को सड़क के किनारे, खेतों में खुले में टट्टी करते हुए देखा। इससे हमने समझा कि इन गाँववासियों को शौचालय की जरूरत है। फिर क्या था, उत्साहपूर्वक हमने ईंट वगैरह लाकर कुछ ही समय में एक शौचालय बना दिया। उद्घाटन के पश्चात् यह सोचते हुए कि अगली छुट्टियों में हम फिर यहाँ आयेंगे, हम वापस बम्बई आ गये। चार महीने के बाद हमने अपने अगले सामाजिक कार्य के लिये कुछ धन इकट्ठा करने का निश्चय किया। इसके लिए हमें पिछले किये कार्यों का ब्यौरा चाहिये था। इसके लिये हममें से एक सदस्य को शौचालय का फोटो लेने के लिये गाँव भेजा गया। उसने वापस आकर बताया कि गाँव वाले उस शौचालय का उपयोग बकरी बाँधने के लिये कर रहे हैं। इससे साफ जाहिर हुआ कि गाँव वाले बहुत ही मूर्ख लोग हैं तथा दुनिया में कोई भी उनकी मदद नहीं कर सकता। हमारे एक शांत स्वभाव वाले सदस्य ने सुझाव रखा कि हम इस पर विचार करें। सोचने पर समझ में आया कि हम लोग ही इसका कारण थे। हम लोगों ने एक ऐसी सुविधा बनाई थी जिसकी कि गाँववासियों को कोई जरूरत नहीं थी तथा हमने बकरियों को बाँधने की जगह की जरूरत को नजर अन्दाज कर दिया था। इससे निष्कर्ष यह निकला कि **विज्ञान सिर्फ समस्या पर आधारित नहीं होना चाहिये, बल्कि जो उस समस्या को हल करने की कोशिश कर रहा है, उस पर भी आधारित होना चाहिए।**

फिर हमारा ध्यान खेती से उद्योग की तरफ गया। हो सकता है कि हम गाँवों के बारे में ज्यादा नहीं जानते हों, लेकिन हमारे पास देश में मिलने वाली सबसे बढ़िया तकनीकी शिक्षा थी जो कि औद्योगिक विकास के लिए इस्तेमाल की जा सकती थी। हमने अपने

मित्रों से तथा शिक्षकों से सुना था कि लघु-उद्योग उन्नति नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि उनको ऐसी कठिन तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो कि वे स्वयं सुलझा नहीं सकते और न ही किसी विशेषज्ञ की सहायता ले सकते हैं। इसके लिये हमने एक विशेषज्ञों का दल तैयार किया। उद्योगों तथा विश्व-विद्यालयों में काम करने वाले परिचित विशेषज्ञों को दल में शामिल होने के लिये तैयार किया गया। लघु-उद्योग चलाने वालों तथा विकास कार्य में लगे कार्यकर्त्ताओं को यह बतलाया गया कि किसी भी प्रकार की तकनीकी समस्या के लिये इस विशेषज्ञों के दल की सहायता ली जा सकती है। सबसे पहली समस्या जो हमारे सामने आयी, वह एक इंजीनियर द्वारा भेजी गई थी। उसे एक लघु उद्योग लगाने के लिये धन की आवश्यकता थी। इस पर विशेषज्ञों की राय थी कि धन की व्यवस्था कोई तकनीकी समस्या नहीं है। उसके बाद एक सदस्या पूर्वी उत्तर प्रदेश के आदिवासी इलाके में विकास कार्य कर रही एक संस्था ने भेजी। उन लोगों ने बहुत पैसा खर्च कर तथा मेहनत कर 250 फीट गहरा एक कुआँ (ट्यूब वेल) खोदा था, लेकिन पानी नहीं मिला था। उन लोगों ने सुन रखा था कि अगर कुए में जमीन के अन्दर बारूद से वहाँ की जमीन खोदी जाएगी तो उससे हुए गड्ढे में जमीन के अन्दर का पानी इकट्ठा हो जाता है। जो कि बाद में पम्प से बाहर निकाला जा सकता है। वहाँ के लोगों को 5000 गैलन प्रति घंटा पानी की जरूरत थी। विशेषज्ञ लोग इस समस्या का हल भी नहीं खोज पाये, क्योंकि हर एक विशेषज्ञ ने समस्या को अपने अलग-अलग नजरिये से देखा। इसलिये वे किसी एक हल पर नहीं पहुँच पाये। इसका मतलब हुआ कि **विज्ञान सिर्फ समस्या तथा जो समस्या को हल करने की कोशिश कर रहा है, पर आधारित नहीं होना चाहिये बल्कि उनके बीच के सम्बन्ध पर भी आधारित होना चाहिये।**

इसके बाद तय हुआ कि अगले रचनात्मक कार्य के लिये इस प्रकार की समस्या ली जाये जिसमें यह साफ-साफ जाहिर हो कि करना क्या है। उसी समय महाराष्ट्र में सूखा पड़ा था। सरकार ने राहत कार्य चालू करने का निश्चय किया। तालाबों को गहरा करने तथा नये तालाब खोदने का भी निश्चय किया गया जिससे कि वर्षा का पानी जमा हो सके तथा आसपास के कुओं का पानी बढ़ सके। हमने सोचा हम इस काम को अच्छी तरह से कर सकते हैं। दो महीने तक हम गाँवों में घूमकर सर्वे करते रहे। ऐसा लगा कि विज्ञान यहाँ कुछ काम आ रहा है। ऐसा ही काम चलता रहा जब तक कि एक दिन एक सदस्य ने सवाल उठाया कि हमें हिसाब लगाना चाहिये कि हमारे किये गये काम से लोगों को कितना फायदा होगा। तब हिसाब लगाया गया कि कितनी जमीन तालाब के पानी के अन्दर आ जायेगी तथा कितनी जमीन की सिचाई इस पानी से होगी। हिसाब लगाने पर पता लगा कि ऐसी जमीन, जिसको तालाब के पानी से लाभ पहुँचेगा, ज्यादातर बड़े तथा अमीर किसानों की है जो कि सरपंच तथा अधिकारी बने हुए हैं। तब प्रश्न उठा कि विज्ञान से सिर्फ कुछ थोड़े से लोगों को ही फायदा क्यों होता है? क्या समस्या, समस्या को हल करने वाला तथा उनके बीच के सम्बन्ध के अलावा भी कुछ ऐसा है जो विज्ञान पर असर डालता है? क्या जो समस्या हल करने की कोशिश करते हैं, उनके भी कई प्रकार हैं? तथा क्या उनका समस्या का नजरिया भी अलग अलग है? हमारी जगह कोई और होता तो क्या वह समस्या को दूसरे नजरिये से देखता? और अगर वह समस्या से प्रभावित होता तो उसके नज़रिये में क्या फर्क पड़ता? इन प्रश्नों पर बहुत बार बहुत प्रकार से विचार हुआ।

हमने सुन रखा था कि मध्यप्रदेश में एक बहुत बड़ा कागज बनाने का कारखाना है जिसने नदी के पानी को दूषित कर दिया है। प्रदूषण के बारे में हमने बहुत-सी रिपोर्ट पढ़ी थी। पानी के प्रदूषण को कम करने के लिये बहुत से वैज्ञानिकों ने उपाय खोजे थे। लेकिन फिर भी पानी का प्रदूषण कम करने के वैज्ञानिक उपाय खोजना मेहनत बेकार करना है। इसलिये समस्या को इन लोगों, जो कि प्रदूषण से प्रभावित हैं, के नजरिये से देखा जाये। इसके लिये हमने सात सप्ताह यह पता लगाने में खर्च किये कि प्रदूषण से लोगों के जीवन पर किस प्रकार का असर पड़ता है। हमने लोगों से पूछना शुरू किया। क्या तुम्हारे जानवर पानी पीने से मर गये? क्या इससे जानवर कम दूध देते हैं? क्या पानी से, जब तुम नदी पार करते हो, तुम्हारे पैरों पर कुछ असर पड़ता है? इससे तुम्हारी फसल पर क्या असर पड़ता है? क्या इससे नदी की मछलियों पर कुछ असर हुआ है? क्या इससे तुम्हारी कमाई पर कुछ फर्क पड़ा है? इन सबकी तुलना करने के लिये हमने कुछ ऐसे गाँवों का भी सर्वे किया जो कि प्रदूषण से प्रभावित नहीं थे। इससे पता चला कि प्रभावित गाँवों में जानवरों के मरने की दर अप्रभावित गाँवों में जानवरों के मरने की दर से लगभग डेढ़ गुनी थी। जानवरों के दूध देने की दर भी लगभग एक चौथाई कम थी। 20 किलोमीटर की दूरी तक मछलियाँ नदी से बिल्कुल ही गायब हो गई थीं। लोगों के पैरों पर चर्म रोगों की दर भी काफी ज्यादा थी। यह सब जानकारी इकट्ठी करके हम सब सम्बन्धित अधिकारियों के पास ले गये। कुछ अधिकारियों ने जानकारी की सत्यता के बारे में शक जाहिर किया। कहने लगे कि गाँव वाले झूठ बोलते हैं। कुछ दूसरे अधिकारियों ने टालने वाली बातें कीं। इन सब अधिकारियों से निराश होकर हम पेपर मिल गये। "अरे आप बिल्कुल चिन्ता न कीजिये। यह समस्या तो बहुत ही मामूली है। पहले ही दो राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालायें इस समस्या पर विचार कर रही हैं और जल्दी ही इस समस्या का पूरा हल मिल जायेगा। हमने पहले ही प्रदूषण कम करने के उपाय किये हैं जिससे कि जानवरों तथा लोगों को कोई नुकसान न हो। सिर्फ पानी का रंग थोड़ा मटमैला है इसलिये लोग शिकायत करते हैं।" इस प्रकार के जवाब से असंतुष्ट होकर हम अन्त में गाँववासियों के पास गये। "हाँ, हमें सब पता है। इस रिपोर्ट में कोई नई चीज नहीं है। यह सब जानकारी तुमने हमसे ही तो हासिल की

है। अब तुम बताओ कि इसका तुम क्या करने वाले हो और तुम्हारे पास इसका हल नहीं है और अगर तुम्हारी पहुँच शासन में नहीं है तो हमारा समय खराब मत करो।" इस घटना ने हमें फिर से सोचने पर मजबूर कर दिया। ऐसा लगा कि लोगों में मतभेद हैं तथा एक प्रकार के लोगों के नज़रिये तथा दूसरे लोगों के नज़रिये में टकराव भी है। अब विज्ञान में ऐसा क्या है जो इस प्रकार का टकराव पैदा करता है तथा बढ़ावा देता है। हमने तो सोचा था कि विज्ञान का लोगों के आपसी टकराव से कोई सम्बन्ध नहीं है। **कहीं ऐसा तो नहीं है कि विभिन्न लोग विज्ञान को विभिन्न नजरिये से अपने-अपने फायदे के अनुसार देखते हैं? तो क्या यह सम्भव है कि एक ही प्रकार का विज्ञान अमीरों को बनाता है तथा गरीबी भी पैदा करता है? क्या विज्ञान अमीरों के हाथ में ऐसा औजार देता जिससे वे गरीबों को गरीब रखते हैं?**

क्या यह भी सम्भव है कि कोई दूसरे प्रकार का विज्ञान है जो गरीबों की मदद कर सकेगा? हमने अगला काम इसके बारे में खोज करने का सोचा। इसके लिये हमने एक क्षेत्र का चुनाव किया तथा वहाँ की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का अच्छी तरह से अध्ययन किया। इस क्षेत्र की ऐसी स्थितियों का भी अध्ययन किया जिसमें कि कान्फ्लिक्ट (टकराव) था तथा उन कान्फ्लिक्ट को दूर करने के लिए हमारा ज्ञान किस प्रकार सहायक हो सकता है, इस बारे में भी सोचा। हमने पानी नदी नालों में इकट्ठा करने तथा वहाँ से किसान के खेत तक ले जाने के बारे में विचार किया। हमने औजारों को नये ढंग से बनाने के बारे में भी विचार किया जिससे कि मजदूरों को कम मेहनत करनी पड़े और वह उसी समय में ज्यादा काम करके ज्यादा मजदूरी पा सकें। हमने गरीबों के संगठन को मजबूत बनाने के बारे में भी सोचा जिससे कि वह लोग उन स्थितियों से मुकाबला कर सकें, जिन्होंने उन्हें गरीब बना रखा है। **हमें लगा कि हमारा विज्ञान इन समस्याओं का हल निकालने के तरीकों में मदद कर सकता है। पहले समस्या को अच्छी तरह से समझो, उसके कारण का पता लगाओ, तब उस कारण को मिटाओ।**

हमने नाले पर मिट्टी का बाँध बनाने का उपाय खोजा तथा नये प्रकार का ज्यादा चौड़ा फावड़ा भी बनाया। इन सब तरीकों के साथ हम किसानों के पास गये। हमने सोचा कि अगर गरीब किसानों को इन तरीकों से फायदा हुआ तो वे लोग इन तरीकों का उपयोग करेंगे तथा हमारे बनाये हुए तरीकों का पालन करेंगे। पर किसानों का रवैया बिल्कुल ही उल्टा था। कहने लगे कि हम नये फावड़े से ज्यादा काम क्यों करें जबकि हमारी मजदूरी उतनी ही रहने वाली है। **अगर हम अपना सारा समय पानी लाकर थोड़ी-सी खेती करने में लगा दें तो उस बीच के समय में हम कमायेंगे क्या? और हमने ऐसा कैसे सोच लिया कि हमारे बताए हुए तरीकों से उनकी समस्या दूर हो जाएगी।** उस समय पहली बार हमें लगा कि हमारे बताये तरीकों से ज्यादा फायदा होने वाला नहीं है। इन समस्याओं के पीछे और भी कई समस्याएँ हैं, जिनके बारे में हमने सोचा ही नहीं है तथा कुछ और लोग उन समस्याओं के बारे में सोच सकते हैं इसलिये इन सब उपायों का कोई फायदा नहीं है, क्योंकि इनका सत्यता से कोई संबंध ही नहीं है। **लेकिन अगर हम उन बुनियादी समस्याओं को नहीं देख पाए या उनके बारे में हमें जानकारी नहीं थी तो ये किसान क्यों नहीं इनका समाधान ढूँढते हैं। इनके पास तो सब जानकारी है, वे लोग तो समस्याओं के बारे में जानते हैं। तो ऐसा क्या है जो इनको सोचने से तथा समाधान ढूँढने से रोकता है।**

इस प्रश्न का जवाब ढूँढने के लिये हमने अपने पिछले सभी अनुभवों पर फिर से विचार किया। इन सभी अनुभवों में ऐसा कौन-सा कारण है? हो सकता है वह कारण इस प्रश्न का जवाब दे सके कि क्यों गरीब अपनी समस्याओं के बारे में कुछ नहीं करते और यह कारण उनके नजरिये से होना चाहिये। **क्योंकि हमें अनुभवों ने सिखा दिया कि विज्ञान जो है सिर्फ समस्या पर नहीं, बल्कि समस्या को देखने वाले तथा उसके खुद के मतलब पर निर्भर करता है। विभिन्न लोग एक ही समस्या को विभिन्न दृष्टि से अपने-अपने मतलब के अनुसार देखते हैं।** इन सब पर खूब विचार-विमर्श करने के बाद हम दो नतीजों पर पहुँचे, कि ये लोग अपनी समस्या को सुलझाने की कोशिश क्यों नहीं करते। पहला यह कि उनके पास जो जानकारी है वह समस्या को इस प्रकार का रूप दे देती है कि समस्या को सुलझाना असंभव लगता है। दूसरा यह कि हर समस्या का कारण दैवीय शक्ति समझा जाता है। ये दोनों नतीजे एक दूसरे से काफी संबंधित हैं। उदाहरण के लिये वह आदमी जिसने अपनी बकरी शौचालय में बाँधी थी, वह शौचालय का संबंध सफाई से नहीं जोड़ पाया पर शौचालय की छत का संबंध बकरी की जरूरत से जोड़ लिया। इसी प्रकार मजदूर लोग ज्यादा काम को कम मजदूरी से तो जोड़ पाये, पर कम मजदूरी को बढ़वाने की नहीं सोच पाये। परन्तु एक प्रकार से अगर सोचा जाए तो एक तरह से समस्या को यह सोचकर कि हम इसको सुलझा नहीं सकते, दूर कर दिया गया है। इनके सोचने का तरीका दैवीय शक्ति से प्रभावित है।

अगर ये दोनों नतीजे सही हैं तो हमारा अगला कदम क्या होना चाहिए? लोगों को दैवीय प्रभाव से कैसे मुक्त किया जाये तथा उनको कैसे समझा जाए जिससे कि वे घटनाओं का आपसी सम्बन्ध जोड़ सकें। चूँकि ये दो नतीजे हम पर भी लागू होते थे, **हमने अपने अनुभवों को जाँचना शुरू किया। किस प्रकार से हमने अपनी समझ को अपने अनुभवों से बढ़ाया था तथा किस प्रकार से हम विज्ञान की चमक-दमक के पीछे विज्ञान का असली रूप देख पाये थे।** हमने पाया कि ऐसा हम एक प्रकार के तरीके का पालन करने से कर सके। वह तरीका था कि किसी भी काम को हाथ में लेने से पहले उस काम का उद्देश्य निश्चित करो। तब उस उद्देश्य के साथ अपने किए गए काम की तुलना करके पता लगाओ कि हम क्या करना चाहते थे तथा हम क्या कर पाए हैं। इससे पता लग सकता है कि हम कहाँ कहाँ सफल हुए तथा कहाँ-कहाँ असफल हुए हैं।

(शेष पृष्ठ 35 पर)

कीटों में सहजबोध

एक सुहावनी सुबह को मैं अपने नन्हें दोस्तों के साथ मई दिवस के जुलूस में जा रहा था। सड़कें लोगों से भरी हुई थीं और आदमियों की यह बाढ़ पटरियों पर और अहातों में ठेलमठेल कर रही थी।

एक जगह हम रुक गये। ऊपर हवाई जहाज घनघना रहे थे। टोली-टोली करके ये इस्पाती पक्षी तेजी के साथ निकलते गये और जमीन पर उनकी छायाएँ फिसलती गईं। अचानक मेरी नज़र एक छोटे-से-काले धब्बे पर पड़ी। वह एक भौंरा था। वह उड़ता हुआ सीधे मेरी तरफ़ आया और फूलों से उस गुच्छे पर आकर बैठ गया, जो मेरे बाल-मित्रों ने मेरे कोट पर लगा दिया था।

हमारी टुकड़ी के बाल-जीवविज्ञानी इस घटना को देखकर चकित हो गये। भौरे ने फूलों की गंध को पकड़ लिया था– इस बात के बावजूद कि धूप से तपे कोलतार से उठती सैकड़ों और गंधों में वह बिल्कुल दब गई थी।

मुझ पर तुरंत कीटों की संवेदनशीलता के बारे में प्रश्नों की झड़ी लगा दी गई और जबाव में मैंने कई और मिसालें भी दीं।

अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने एक दुष्प्राप्य पतंगे को उसके ककून-कृमिकोष से पैदा किया था। इस प्रजाति के नर के सुविकसित कत्थई-लाल पंख होते हैं, जिन पर सफ़ेद बंदियाँ होती हैं और रोंयेदार कंघाकार शृंगिकाएँ लंबी और धागे जैसी पतली होती हैं। मैंने ककून से मादा को पैदा करके उसे जालीदार कपड़े की थैली में संभालकर रख लिया। ये पतंगे अपने प्राकृतिक निवास–जंगल तक में मुश्किल से ही मिल पाते हैं।

शाम को मैंने थैली को बरामदे में लटका दिया। सोचो कि मुझे कितना अचरज हुआ होगा, जब यह देखा कि मेरे ग्रीष्म कुटीर से कोई डेढ़ किलोमीटर दूर के जंगल से नर पतंगों की एक कतार खेत को पार करती उड़ती चली आ रही है। पतंगे हवा के खिलाफ उड़ते हुए सीधे थैली की तरफ आ रहे थे। थैली पर पहुँच कर उन्होंने उस पर चारों तरफ से हमला बोल दिया और भीतर मादा के पास पहुँचने की कोशिश करने लगे। क्या उनकी "घ्राण-शक्ति" सचमुच आश्चर्यजनक नहीं थी, जो नरों को कोई डेढ़ किलोमीटर के फासले से मादा के पास खींच लाई थी ?

हम सभी ने कूड़े के ढेरों पर मक्खियों के बड़े-२ समूहों को उड़ते देखा होगा, लेकिन हममें से कुछ ही ने अपने से प्रश्न किया होगा कि मक्खियाँ अपने भोजन का पता कैसे लगाती हैं। खिड़की से सड़े हुए गोश्त का एक टुकड़ा तो बाहर फेंक दो–बड़ी सुनहरी मक्खियों की भीड़ उस पर टूट पड़ेगी, मानों वे उसके इंतजार में ही थीं। असल में उनमें से कई तो न जाने कितनी दूर से उड़कर आई होंगी।

उत्तरी हिरनों की नाकों और खालों को डंसने वाली घुड़मक्खियाँ कभी-2 तो 20 किलोमीटर उड़कर अपने शिकार पर हमला करने आती है। मैंने 10 या 15 मिनट पहले ही मारे गए पक्षी पर मुर्दाखोर गुबरैलों को बड़ी-2 दूरियों से पहुँचते देखा है। अभी उसकी लाश ने सड़ना शुरू भी नहीं किया था, मगर मुर्दाखोर गुबरैलों और "माँस-मक्खियों" ने उसकी तरफ कूच कर भी दिया था। जब काफिले के ऊँट रेगिस्तान में लीद करते हैं, तो बड़े-2 गुबरैले न जाने कहाँ से तुरन्त उड़कर उस पर पहुँच जाते हैं।

कीटों की यह अद्भुत विशेषता उनकी अत्यधिक संवेदनशील तंत्रिका-कोशिकाओं के कारण है, जो उनकी शृंगिकाओं की आधार-संधि के पास छोटे-2 प्यालेनुमा विदारों में स्थित होती है।

नर तितलियों, पतगों, कुछ मुर्दाखोर गुबरैलों तथा अन्य कीटों की शृंगिकाएँ कभी-कभी कंघाकार होती है–अर्थात् वे कंघे के दांतों से मिलती-जुलती है। इस अंग की इस बनावट के कारण उसकी संवेदनशील सतह कई गुनी बड़ी हो जाती है। हवा दर्जनों किलोमीटर दूर की गंध कीटों के पास ले जाती है, मगर अभी

(शेष पृष्ठ 24 पर)

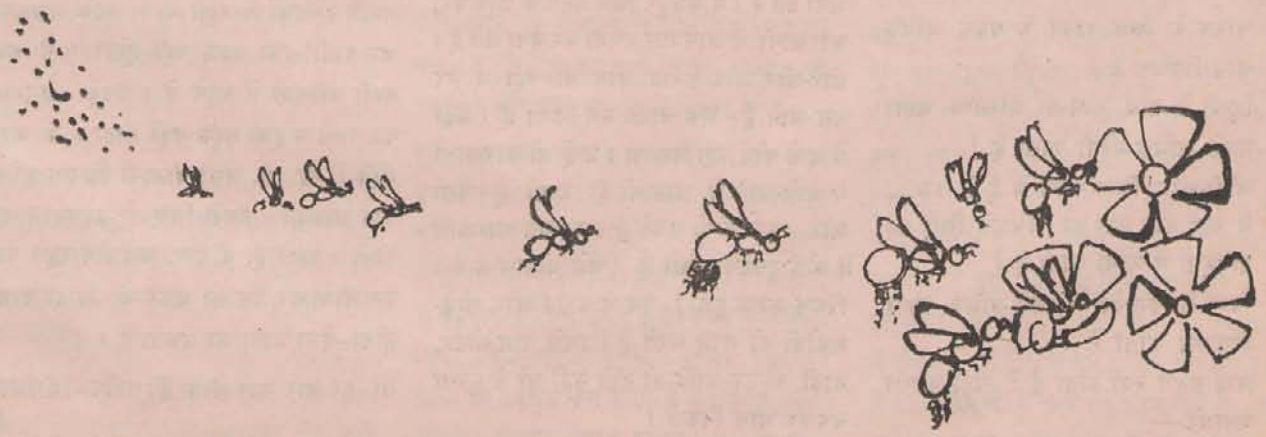

दौड़ सवाल-जवाब की

नवम्बर माह में हरदा की तीन उच्चतर माध्यमिक शालाओं में सामान्य ज्ञान की एक प्रतिस्पर्धा आयोजित की गई थी। 10 वीं कक्षा के ही दो छात्रों द्वारा लिखी गई उस प्रतिस्पर्धा की रपट प्रस्तुत है—

शासकीय बहुउद्देश्यीय उच्चतर माध्यमिक शाला हरदा में 17-11-84 को दसवीं कक्षा के अ और ब वर्ग के बीच एक प्रतिस्पर्धा हुई। यह खेल या प्रतिस्पर्धा थी सामान्य ज्ञान की। दोनों वर्गों से 10-10 छात्र चुन लिए गए। कक्षा के बाकी छात्र दर्शक की हैसियत से यह देख रहे थे। प्रतिस्पर्धा में दोनों वर्गों से 12-12 प्रश्न एक के बाद एक पूछे गए। प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक वर्ग के दस छात्र आपस में सलाह करके देते थे। सही उत्तर देने पर उस वर्ग को दो अंक मिल जाते थे। जिस वर्ग से प्रश्न पूछा जाता था, यदि उसका वे सही उत्तर नहीं दे पाते थे, तब वही प्रश्न दूसरे वर्ग से पूछा जाता था। सही उत्तर बताने पर दूसरे वर्ग को एक अंक मिलता। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए दो मिनिट मिलते थे। यदि दोनों वर्ग किसी प्रश्न का उत्तर न दे पाते तो फिर उस प्रश्न का उत्तर शिक्षक या एकलव्य के सदस्य बताते थे।

जो 24 प्रश्न पूछे गये थे, उनमें से कुछ इस प्रकार थे—

1. भारत के किस राज्य में सबसे अधिक लोग शिक्षित हैं ?
2. हिन्दी के बाद कौन-सी भारतीय भाषा सबसे अधिक बोली जाती है ?
3. चौरी-चौरा किस राज्य में है ? 1922 में वहाँ क्या घटा था। जिसके लिए वह इतिहास में जाना जाता है ?
4. विश्व के किस देश में सबसे अधिक सोना निकाला जाता है ?
5. चन्द्र ग्रहण क्यों होता है ? सही कारण बताओ:—

   क—जब सूर्य चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच आ जाता है ?

   ख—जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच आ जाता है ?

   ग—जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है ?

   घ—इनमें से कोई नहीं ?
6. यदि 5 आदमी मिलकर किसी काम को 10 दिन में करते हैं तो उसी काम को 6 आदमी कितने दिन में कर पायेंगे ?
7. हरदा की नगरपालिका ने 1898 में ऐसा कौनसा काम कराया था, जिसके लिए वह पूरे प्रदेश में प्रसिद्ध है ?

इस प्रतिस्पर्धा में वर्ग अ ने 23 और ब ने 18 अंक प्राप्त किए। पूरे समय दोनों वर्गों में कड़ा संघर्ष चलता रहा। मुकाबला बड़ा ही तगड़ा रहा। अंत में प्राचार्य ने आयोजक एकलव्य संस्था का आभार प्रदर्शन किया।

—अमित जोशी कक्षा 10 वीं अ

—अमित दत्त कक्षा 10 वीं ब

यही प्रतिस्पर्धा महात्मा गांधी शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला और शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक शाला में भी आयोजित की गई।

(*) प्रश्नों के उत्तर पृष्ठ 22 पर देखें।

(पृष्ठ 7 का शेष)

की झुग्गी-झोपड़ी उखाड़ फेंकते हैं और उन्हें भगा देते हैं। ये मजदूर फिर शहर के छोर पर, कारखानों के आसपास अपना घर बना लेते हैं। धीरे-धीरे और गरीब लोग भी वहीं आकर बस जाते हैं— एक बस्ती बन जाती है। यहाँ से उन्हें कोई नहीं भगाता। उन्हें भी कारखानों में जाने-आने में आसानी हो जाती है— पैसा और समय दोनों बचते हैं। पर जब कारखाने में कोई दुर्घटना होती है (जैसे भोपाल में गैस रिसन काण्ड हुआ), तब ये गरीब लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मरते हैं। इनके पास मोटर, गाड़ी, स्कूटर आदि तो होते नहीं जो ये तुरन्त बचकर भाग निकलें।

ऐसे ही, बाढ़ में भी गरीब लोग ही ज्यादा मरते हैं—क्योंकि नदी के पास के निचले इलाकों में गरीब गाँव ही बसते हैं। सम्पन्न गाँव आम तौर पर ऊँची, सुरक्षित जमीन पर बसे होते हैं। इसी तरह, जब किसी झुग्गी-बस्ती में आग लग जाती है तो बहुत तबाही होती है। ये झोपड़ियाँ लकड़ी के पट्टे, भूसे आदि से बनी होती हैं, आग बहुत आसानी से लग जाती है। पैसे वालों के ईंट-चूने के मकान ज्यादा सुरक्षित होते हैं। गरीबों की झुग्गियाँ पास-पास, ठसाठस बनी होती हैं, इसीलिए आग खूब आसानी से फैलती है। उनके बीच इतनी जगह भी तो नही होती कि आग बुझाने वाले दमकल अन्दर जा सके। इन बस्तियों में पानी की भी दिक्कत होती है (नगर पालिका या निगम की कृपादृष्टि गरीब बस्तियों पर बहुत कम होती है न !)—सो, आग बुझाने के लिए भी पानी की कमी पड़ जाती है।

संकट उन पर आए, वो तो आफत है ही— पर संकट के बाद इलाज वगैरह कराने में भी गरीब ही पिसता है। उनके पास इतना पैसा भी कहाँ कि वे अपना इलाज भलीभाँति कर सकें। फिर, वे गरीबी के मारे, मरते हैं। अभी गैस काण्ड के बाद भोपाल की झुग्गी बस्तियों के कई लोग राहत शिविरों में रह रहे थे। डॉक्टर उनका इलाज करने में लगे थे। पर उन डॉक्टरों ने पाया कि गैस से पीड़ित लोगों में से सैकड़ों लोग टी. बी. के मरीज हैं— वे भौचक्के रह गए। पर असल में, यह कोई चौंकाने वाली बात नहीं है— गैस पीड़ित लोग ज्यादातर गरीब थे—कमजोर हालत में वे गन्दी बस्तियों में रहते थे। उनके आस-पास का पानी हवा साफ नहीं होता। वे अपने गन्दी बस्तियों में रहते थे। उनके आस-पास का पानी व हवा साफ नहीं होता। वे अपनी सीने में टी. बी. जैसी बीमारी छिपाए हों तो क्या आश्चर्य! उनके लिए तो यह आम बात होगी। पहले ही बीमार, कमजोर रहने वाले इन लोगों पर गैस का असर भी ज्यादा घातक होगा—ऐसा माना जा सकता है।

तो हर बार मारे जाते हैं गरीब—इसीलिए।

होशंगाबाद विज्ञान

अनुवर्तन में यो तो बहुत कुछ किया जा सकता है। अनुवर्तन में क्या-क्या किया जाना चाहिए इसकी आदर्श सूची बनाना कठिन है। फिर भी क्या किया जा सकता है इसकी एक झलक देने के लिए दो अनुवर्तन प्रतिवेदन के कुछ अंश दिये जा रहे हैं।

प्रतिवेदन-1

केवल एक शिक्षक प्रशिक्षित है। कक्षा 6, 7 और 8 के वर्गों को अकेले ही विज्ञान पढ़ाते हैं। कैसे करते हैं वे ही जानें। दिन भर, साल भर विज्ञान ही विज्ञान। क्या उनका दिमाग नहीं चकरा जाता। बच्चे पढ़ रहे थे विज्ञान, शिक्षक नहीं थे अतः कक्षा छठवीं के बच्चों की कापियाँ देखीं। लगभग 60–70 कापियाँ। जो कुछ देखा वह इस प्रकार है:–

अध्याय	कापियाँ देखी	मूल्यांकन
1. **पत्तियों का समूहीकरण**	27	4 पूरी तालिका
प्रश्न 4 की तालिका.		1 आधी 3 चौथाई बाकी ने कुछ नहीं किया।
प्रश्न 5 की तालिका	27	3 ने एकाध उदाहरण देने की कोशिश की। बाकी ने किताब का ही उदाहरण उतार लिया बस।
2. **चुम्बक** प्रश्न 1 की तालिका	27	केवल 13 ने चुम्बकीय और अचुम्बकीय वाला समूहीकरण तालिका में किया, शेष 14 ने कुछ नहीं किया। केवल वस्तुओं को जाँचा।

परन्तु कापियाँ भरी हुई थीं। पता चला कि लिखवा दिया जाता है। जो काम बच्चों ने किया भी था वह वे समझा नहीं पाये।

कक्षा 6 के बच्चों से बात की। पुस्तक की विषय सूची का उपयोग 8–10 बच्चे जानते थे। बाकी सभी को खेल-खेल में इसकी ट्रेनिंग दी। दस मिनिट में सभी सीख गये और उनसे दोस्ती भी हो गई।

'पत्तियों का समूहीकरण' का प्रश्न-5 सबने पढ़ा। दो-तीन बार अपने आप। उनसे पूछा इस प्रश्न में क्या पूछा है? कुछ हाथ उठे। फिर से पढ़वाया। कुछ और हाथ उठे। जो उत्तर दिए वे इस प्रकार हैं:—"तालिका बनाना है," "समूह बनाना है," "गुणधर्म देना है"। अच्छा एक गुण धर्म बताओ? "पीपल", "नीम"। मैंने कहा उत्तर गलत है। नाम नहीं गुण धर्म पूछा है। अब ठीक उत्तर आने लगे–नुकीला सिरा, खुरदरी चिकनी, कटीली, गोल रोएँदार, चमकीली। प्रत्येक के उदाहरण भी दिए गये। बच्चों से कहा कि तालिका में इन गुण धर्मों के चित्र बनाओ। नुकीला सिरा गुणधर्म का चित्र पुस्तक में दिखाया गया है। बच्चे 'खुरदरी' का चित्र बनाना चाहते थे, जो उन्होंने इस प्रकार बनाया:—

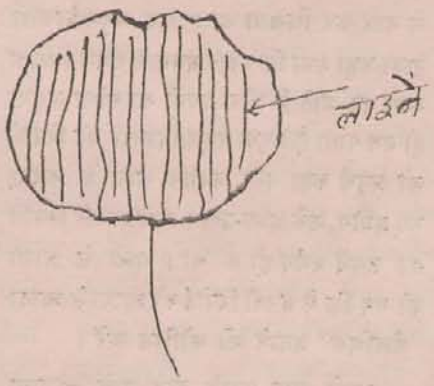

चित्र देख कर लगा कि चित्र बनाने की कुशलता नहीं है। मैंने पूछा क्या तुम "कड़वा" गुण धर्म का चित्र बना सकते हो। कुछ बोले, "नहीं"। कुछ ने कहा, "नीम"। एक बार फिर पत्ती के नाम और गुणधर्म में भ्रम। इसे दूर किया। धीरे-धीरे तालिका पूरी हुई। उनसे पूछा कि तुम्हारी कापी में तालिका पूरी क्यों नहीं है। बच्चों ने कहा—मालूम नहीं था, समझ में नहीं आया, सर ने बताया नहीं था।

इतनी देर की बात से यह स्पष्ट नजर आने लगा कि इस प्रश्न पर मेहनत नहीं हुई थी। बच्चों को पहली बार तालिका बनाने का मौका होता है, अतः जमकर अभ्यास कराने से बाद में दिक्कत नहीं होगी। मैंने कहा कि जब समझ में नहीं आया तो सर से पूछ लेते। "डर लगता है, मारते हैं, एक लड़के का हाथ टूट गया था।" ऐसा महसूस हुआ कि कक्षा में प्रश्न व संवाद का माध्यम नहीं बना था। फिर उन्हें विज्ञान सीखने का सूत्र समझाया।

डरो मत	परिभ्रमण पर जाओ
प्रश्न पूछो	स्वयं सोचो, समझो
प्रयोग करो	स्वयं सोचकर लिखो

इस पूरी चर्चा के दौरान प्रधान पाठक बैठे हुए थे। बाद में उनसे बातचीत की। उन्होंने आश्वासन दिया कि संबंधित शिक्षक से बात करेंगे।

प्रतिवेदन–2

आज जब मैं शाला में अनुवर्तन हेतु गया तब कक्षा में जाकर जो स्थिति मैंने देखी, उससे तो ऐसा आभास हुआ कि इस नई पद्धति का उद्देश्य ही समाप्त हो गया है, क्योंकि शिक्षक स्वयं प्रयोग का प्रदर्शन कर छात्रों को दिखा रहे थे जबकि होना यह चाहिए था कि प्रत्येक टोली स्वयं प्रयोग करे एवं जो निरीक्षण आये उनको छात्र अपनी पुस्तिका (कापी) में लिखे तथा बाद

(शेष पृष्ठ 18 पर)

मासिक गोष्ठी--तिरला
नवम्बर, 1984

गोष्ठी में तिरला संकुल के लगभग 15 शिक्षक/शिक्षिकाएँ, अनुवर्तनकर्त्ता व एकलव्य सदस्यों ने भाग लिया। संयोजक श्री सिंह ने कार्यवाही आरम्भ की और पूरी गोष्ठी के मध्य होने वाले कार्यक्रम की सूची पढ़ी। पिछले माह का प्रतिवेदन पढ़ने के पश्चात आरम्भ हुआ एकलव्य द्वारा दी गई सूचनाओं का सिलसिला। किट, बुलेटिन व अध्ययन कक्ष सम्बन्धी सूचनाओं का शिक्षकों ने स्वागत किया। उन्हें अवगत कराया गया कि कक्ष दो घंटे के लिए शाम को प्रतिदिन खुलेगा जिसमें अनेक विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध हैं। तत्पश्चात शिक्षकों द्वारा पढ़ाये गये अध्यायों (पिछले माह) की सूची ले ली गई। शिक्षकों ने आई समस्यायें बताईं। एक शिक्षक का कहना था कि अरंडी तथा रतन जोत का बीज एक जैसा दिखता है, बच्चों का भ्रम दूर कैसे करें? एक एकलव्य सदस्य द्वारा बतलाया गया कि अरंडी के बीज ज्यादा तेलयुक्त होते हैं। एक शिक्षक के कहे-नुसार बच्चे गणक पर 12365 संख्या दिखा पा रहे थे परन्तु लिखवाने पर वे उसे 1200030065 या कुछ 1203065 लिख रहे थे। शिक्षकों को बताया गया कि दो दिन वे बच्चों का गणित का ज्ञान देखकर ही गणक का पाठ करायें।

क्षेत्रफल, ग्राफ व नक्शा बनाओ पर आधारित एक ही लघु प्रश्न आधे घण्टे के लिए सभी को करने के लिए दिया गया। प्रश्न थे:-

1. एक खेत 80 मी. लम्बा व 65 मी. चौड़ा है। उपयुक्त पैमाने द्वारा ग्राफ पेपर पर इसे दर्शाइये। लिया गया पैमाना भी लिखें।
2. (क) ग्राफ पेपर पर निम्नलिखित बिन्दु अंकित करें। (11,5), (3,15), (0,4), (10,6) और (4,0)

(ख) इन बिन्दुओं को मिलाकर बड़ी से बड़ी आकृति बनाएँ व इसका क्षेत्रफल ज्ञात करें।

पाया गया कि स्वयं शिक्षकों का ज्ञान इसमें अधूरा था। तब एक एकलव्य सदस्य ने बताया कि लघु प्रश्न देने का उद्देश्य है कि बच्चों को इस प्रकार के प्रश्नों से समय-समय पर अवगत कराते रहें। ऐसे प्रश्नों से बच्चों को मूल अवधारणाओं वाले अध्याय स्पष्ट होंगे। इसी तरीके के प्रश्न, परीक्षा में भी आते हैं। अतः शिक्षक पहले से ही इनसे परिचित रहें। ग्राफ, नक्शे व क्षेत्रफल की पूरी जानकारी श्यामपट्ट पर दी गई।

अनुवर्तन रिपोर्ट्स के शैक्षणिक सम्बन्धी मुद्दों पर चर्चा आरम्भ हुई। एक शिक्षक ने प्रश्न उठाया कि अक्सर हमसे बच्चे पूछते हैं कि गिरगिट जितनी गाय व बिच्छू बड़ा खटमल क्यों नहीं होता है? हम समझ नहीं पाते कि बच्चों को किस प्रकार से यह समझाया जाए। तब एक एकलव्य सदस्य द्वारा भौतिकी एवं जैव विकास के सरल नियमों द्वारा इसे सभी को समझाया गया। एक शिक्षक ने पाठ "दूरी नापना" की एक तालिका में दूरी, बित्ते व अंगुल दोनों से अलग-अलग नपवाई थी। चर्चा में उभरा कि दूरी बित्तों में नापनी थी और जहाँ पर एक बित्ते से कम दूरी बची हो वहाँ उसे अंगुल से नाप कर लिखना था। एक अनुवर्तनकर्त्ता द्वारा कहा गया कि स्केल बनवाते समय शिक्षक आगे बढ़ जाते हैं और बच्चों का स्केल अधूरा ही बन पाता है। एक अनुवर्तनकर्त्ता की रिपोर्ट को अपूर्ण कहा गया, क्योंकि कक्षा के कराए गए प्रयोग, उठे प्रश्न-उत्तर व कक्षा की स्थिति का उसमें वर्णन ही न था। सभी से आशा की गई कि वे अपनी रिपोर्ट को ज्यादा से ज्यादा "शैक्षणिक" बनाने की कोशिश करें।

अगले माह पढ़ाये जाने वाले अध्यायों की जानकारी शिक्षकों से ली गई। कुछ पाठों को "कामन" किया गया व फिर उस पर आधे घण्टे के अवकाश के पश्चात् विस्तृत चर्चा हुई। पाठ थे जल, मृदु व कठोर, सन्नि-कटन, घट-बढ़ व क्षेत्रफल। शिक्षकों को बताया गया कि जल वाले पाठ में सावधानियों व सही प्रयोगों की आवश्यकता होगी। मिलाई गई साबुन की बूंदें, लिया गया आसुत जल व लवण की निर्धारित मात्रा ही लेवें। बच्चों को ज्ञान देना है कि पानी में भी कुछ अशुद्धियाँ व तत्व और लवण घुले रहते हैं। घट-बढ़ वाला पाठ मूल अवधारणा का पाठ है। अतः छात्रों को ठीक तरह से कराना होगा। उन्हें अपना अनुमान सही करना, न्यूनतम नाप का ज्ञान, दूरी नापना व स्तम्भलेख बनाना आ जाना चाहिए। शिक्षकगण संशय में थे कि दिसम्बर में चुनाव इत्यादि होने की वजह से वे पूरा अध्याय करा पायेंगे या नहीं।

अंत में गोष्ठी का समापन हुआ एक अनुवर्तनकर्त्ता की वार्ता, "जुगनू क्यों चमकते हैं" द्वारा। वार्ता रुचिकर व ज्ञानवर्धक थी। परन्तु वार्ता देते समय भारी तकनीकी शब्दावली का उपयोग ज्यादा किया गया था। इससे वार्ता को सभी शिक्षकों को समझने में थोड़ी दिक्कत आई। एकलव्य सदस्य ने जोर दिया कि वार्ता में ऐसी शब्दावली उपयोग में न लायें व इसको और भी सरल भाषा में प्रस्तुत करें। उन्होंने बताया कि जुगनू में ही नहीं बल्कि कई अन्य थल-जल के प्राणियों में भी प्रकाश उत्पन्न करने की यह क्रिया होती है। जब वार्ताकार ने यह बताया कि कुछ जलीय पौधों में भी प्रकाश उत्पन्न करने की प्रक्रिया होती है तब अधिकांश लोग इस बारे में सहमत नहीं हुए। अगली गोष्ठी तक इसकी समुचित जानकारी प्राप्त करने का आश्वासन दिया गया।

इस सारी वार्ता का सार यह था कि ऐसे जन्तुओं में 'ल्यूसिफेरिन' नामक रसायन होता है। जिसका जैव-ऑक्सीकरण होने से

प्रकाश रूपी ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस क्रिया के द्वारा ये जन्तु अपनी ही जाति के सदस्यों को पहचानने, दुश्मनों को डराने एवं प्रजनन क्रिया हेतु साथी को आकर्षित करने का कार्य सम्पन्न करते हैं।

इस वार्ता के साथ ही गोष्ठी का समापन हुआ।

मासिक गोष्ठी-धार, नवम्बर 1984

जैसा कि हमेशा से होता आया है, इस बार भी गोष्ठी में दूसरे जिलों के अनुवर्तनकर्त्ता व महाविद्यालय के व्याख्याता उपस्थित थे। संयोजक, एक माध्यमिक शिक्षक द्वारा कार्य सूची की घोषणा और गोष्ठी आरम्भ हुई। पिछले माह के प्रतिवेदन पर प्रतिक्रिया थी कि इसे संक्षिप्त ही रखा जाये न कि विस्तृत रूप से हर घटना दर्ज हो। इस गोष्ठी का मुख्य आकर्षण था, शैक्षणिक मुद्दों पर गर्म बहस और उससे प्राप्त निष्कर्ष। शिक्षकगण व अनुवर्तनकर्ता उत्सुक थे अपनी-अपनी समस्याओं और प्रयोगों का निदान करने के लिये।

एकलव्य सदस्य द्वारा आवश्यक सूचनाएँ प्रदान की गईं। यहाँ पर भी शिक्षकों ने अपना योगदान अध्ययन कक्ष में देने के लिए कहा। तय हुआ कि शिक्षक व अनुवर्तनकर्त्ता, दोनों एकलव्य आफिस की प्रयोगशाला में अपनी समस्याओं का हल ढूंढेगे।

सभी शिक्षकों से गत माह में पढ़ाये गये पाठों की सूची ली गई व समस्याओं पर चर्चा आरम्भ हुई। एक शिक्षक ने जल के प्रयोग कराने से पहले, कठोर व मृदु जल की परिभाषा छात्रों को दे दी। पाठ का उद्देश्य उन्हें बताया गया, जिसे उन्होंने स्वीकारा। हवा व पानी द्वारा लगाये गये बलों के कई उदाहरण प्राप्त किये गये।

शंका समाधान के पश्चात् तिरला के समान ही एक लघु प्रश्न सभी के लिए दिया गया। सम्बन्धित पाठ थे नक्शा, क्षेत्रफल व ग्राफ़ बनाओ। आधे घंटे की अवधि के पश्चात् सभी के ग्राफ बोर्ड पर 'पिनअप' करके 'डिस्पले' किये गये। शिक्षक अचंभित थे एक-दूसरे की ग्राफ की विभिन्न आकृतियाँ देखकर! बाहर से आये अनुवर्तनकर्त्ता ने सहज भाषा में, प्रश्नों का उत्तर देते हुए ग्राफ बनाने की विधि का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि ग्राफ को चार खण्डों में बाँटा जाता है जिसमें (+, +) (—, +), (—; —) व (+,—) क्रमशः खण्ड होते हैं, क्योंकि प्रश्न में सभी बिन्दु (+, +) के थे अतः दोनों अक्षों की रेखाएँ ग्राफ के किनारे पर लेते हैं जिससे पूरा ग्राफ उपयोग हो सके। पैमाने का चयन यों हो कि आकृति जो बिन्दुओं को मिलाने पर बनी थी, पूरे ग्राफ पर आ जाये। उन्होंने बताया कि खाने गिनते समय, बच्चे सन्निकटन का पाठ भी दोहरा जाते हैं।

अब आरम्भ हुई अनुवर्तन रिपोर्टस् पर चर्चा। सचमुच गोष्ठी का यह भाग अद्वितीय रहा। एक अनुवर्तनकर्त्ता, जिन्होंने लगभग 4 घंटे तक एकलव्य कार्यालय में जल सम्बन्धी प्रयोग किया था, शिक्षकों से उन प्रयोगों की जानकारी ली। नमक व कैल्शियम सल्फेट लवणों द्वारा किये गये प्रयोगों में निष्कर्ष सभी शिक्षकों के भिन्न थे। इन अनुवर्तनकर्त्ता के अनुसार तालिका में एक 'कॉलम' और होना चाहिए था जो कि नमक के घोल को आसुत जल से तुलना पर प्राप्त होता था। बाकी शिक्षकों के अनुसार तालिका ठीक थी, पर हाँ तुलनात्मक झाग दिखाने के लिए एक और संकेत होना चाहिए था। एक शिक्षक के अनुसार घर के नमक व सोडियम क्लोराइड से किए गये जल के प्रयोग के निष्कर्ष भिन्न-भिन्न थे। स्पष्ट हुआ कि खाने के नमक में कई और लवण भी मिले रहते हैं अतः जल का प्रयोग नमक से संतोषजनक नहीं होगा, सोडियम क्लोराइड ही लेना चाहिए। इसी प्रकार एक अनुवर्तनकर्त्ता की रिपोर्ट में था कि आसुत जल साफ व शुद्ध जल होता है। इसमें कुछ भी घुला नहीं रहता है। चर्चा से स्पष्ट हुआ कि आसुत जल में कुछ हद तक गैसें घुली रहती हैं। अवकाश का आधा घण्टा समीप आया और तब शिक्षकगण इसी पर चर्चा करते हुए निकले।

अगले माह में पढ़ाये जाने वाले अध्यायों की सूची और उस पर फिर से एक बार जोरदार चर्चा आरम्भ हुई। शिक्षकों ने प्लास्टिक चूड़ियों द्वारा स्वयं "स्प्रिंग बैलेन्स" तैयार करना स्वीकारा और ग्राफ बनाओ पाठ के प्रयोग पूरे करवाने की ठानी। पृथक्करण पाठ से एकलव्य सदस्य ने एक तालिका बनाकर कुछ पदार्थों के नाम व उनके गुणधर्म बताये और नीचे प्रश्न लिखे कि कैसे मिश्रणों को अलग करेंगे? उदाहरणार्थ-नौसादर, नमक, कपूर व चुम्बक का बुरादा के गुणधर्म तालिका में दिए गए। शिक्षकों ने बताया कि कपूर व नौसादर उर्ध्व-पातन द्वारा व नमक पानी में घोल कर अलग किया जायेगा। बाद में नौसादर और कपूर को पानी में घोला तो कपूर ऊपर तैरेगा और अलग कर दिया जायेगा। शिक्षकों ने अलग करने की दो विधियाँ बताई परन्तु चर्चा द्वारा निकला कि बच्चों को वह विधि अपनानी चाहिए जिसमें तर्कशक्ति व वैज्ञानिक विश्लेषण ज्यादा हो। तालिका का उद्देश्य था कि विभिन्न गुणधर्मों से तो बच्चे परिचित हो ही जायें तथा इन गुणधर्मों के आधार पर पृथक्करण करना स्वयं खोजें। यह वैज्ञानिक खोज ही इस पाठ का आधार है।

एक महिला अनुवर्तनकर्त्ता द्वारा दी गई वार्ता का विषय था, "हैली-कॉमेट" (पुच्छल-तारा) जो 1985 में आकाश में दिखाई देने वाला है। ज्ञानवर्धक जानकारी मिली जैसे यह हर 75 वर्ष बाद दिखता है, कॉमेट का आकार, इसकी संरचना व सूर्य के गिर्द चक्कर काटने में उपयुक्त भौतिकी नियमों का पालन और इसकी वैज्ञानिक खोज पर भी योग-दान मिला। कॉमेट में ऊपर से बर्फ परन्तु अन्दर इसके गर्म गैसें रहती हैं। बर्फ का आवरण सूर्य की गर्मी से पिघलता है तो गर्म गैसें दिखती हैं। अगले वर्ष संसार भर के वैज्ञानिक टेलि-स्कोप द्वारा इसको देखने की पूर्व तैयारी कर चुके हैं। अगली वार्ता देने हेतु विषय है, "विद्युत् मछलियाँ" जो एक अनुवर्तनकर्त्ता देंगे।

अगली गोष्ठी के लिए स्वयं ही संयोजक, वार्त्ताकार व रिपोर्ट लिखने के लिए नाम प्रस्तुत किये गये।

नामली की रपट

रतलाम जिले के संगम केन्द्र नामली में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम इसी सत्र (1984-85) से कक्षा छठवीं में शुरू हुआ है। श्री चन्द्रकान्त वायगांवकर ने वहाँ से जो रपट भेजी है उसके अंश यहाँ प्रस्तुत हैं ।

माह जुलाई अगस्त में समूह बनाना और पत्तियों का समूहीकरण किया गया। जो अध्याय किए गए, उन पर फिर लघु प्रश्न भी दिया गया। अधिकांश बच्चों से लघु प्रश्न सही बना।

मासिक गोष्ठी में पिछले माह हुए अध्यायों की तथा आगामी माह में होने वाले अध्यायों पर विस्तार से चर्चा हुई। गोष्ठी में कुछ प्रशासनिक मुद्दे भी उठाए गए। परन्तु वे उठे न। उठे एक जैसे ही रहे, क्योंकि उनका समाधान आज तक नहीं हुआ।

दो बार परिभ्रमण हुआ। दोनों परिभ्रमण अनुवर्तनकर्त्ताओं की उपस्थिति में हुए। परिभ्रमण में जो सामग्री इकट्ठी करना थी उसके अलावा यह भी सीखने मिला।

(1) गन्ने की नई जाति "7308" देखने को मिली।

(2) कटहल के बारे में जानकारी मिली कि यह 12 वर्ष में फल देता है। इसके फल तने और जड़ों के ऊपर लगते हैं।

(3) रासायनिक उर्वरकों को (खाद) एवं कीटनाशक दवाओं का उपयोग कब और कैसे हो इसकी जानकारी मिली।

(4) एक किसान श्री बद्रीप्रसाद सांकला ने हरीखाद बनाने की विधि की जानकारी दी।

शिक्षकों के अनुभव उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत हैं।

1. इसमें छात्राओं की सक्रियता दिखाई दी, क्योंकि उन्होंने फसलों एवं पत्तियों को इकटठा कर सम्हालकर रखा है। फ्यूज बल्ब, शक्कर, नमक, सेल, खटमल, जूं, मकोड़ा, चींटा, मक्खी, मीठा तेल, खाली माचिस के खोके आदि सामान सहज ही जुटा लिया। इस कार्य में न केवल कक्षा छठवीं की छात्रायें, बल्कि उनकी बहनें (7वीं और 8वीं की छात्राएँ भी) तत्परता से सक्रिय दिखीं। जिन्होंने कक्षा 6वीं की छात्राओं को ग्लिसरीन, लकड़ी के गुटके, प्लास्टिक की चम्मचें, कीलें सहज ही जुटा दीं।

2. इस योजना से न केवल विद्यार्थी बल्कि सहयोगी शिक्षक, शिक्षिकाएँ एवं प्रधानपाटक स्वयं भी जुड़ीं हैं। उन्होंने 51 रु. इस योजना को दान स्वरूप प्रदान किए। साथ ही एक आलमारी भी किट सामग्री रखने हेतु उपलब्ध करा दी। इस दान राशि का उपयोग आवश्यक शिक्षण सामग्री खरीदने के लिए किया जा रहा है।

(15 का शेष)

में सभी टोलियों के निरीक्षण से निष्कर्ष निकाला जाये। इस प्रकार छात्र स्वयं प्रयोग कर निरीक्षण लिखें तथा छात्रों के निरीक्षण से निष्कर्ष निकालना चाहिए।

छात्रों को बीच-बीच में सामग्री हेतु भेजा जा रहा था, जो नहीं होना चाहिए बल्कि मेरे विचार से शिक्षक को कालखण्ड में जाने से पूर्व या एक दिन पूर्व पुस्तक के माध्यम से देख लेना चाहिए कि अगले दिन पढ़ाये जाने वाले पाठ में प्रयोग में लगने वाली कौन-कौन-सी सामग्री चाहिए तथा टोलियों के हिसाब से कितनी होगी।

छात्रों के पास पुस्तकें थी तथा दो-तीन छात्रों की उत्तर-पुस्तिका भी देखी जिससे यह लगा कि शिक्षक द्वारा समय-समय पर उ. पुस्तिकाएँ जाँची जाती है जो अच्छा कार्य है।

यह देखने में आया कि छात्रों का भाषा ज्ञान भी कमजोर है। मैंने एक छात्र की कापी देखी तो उसमें छात्र ने, "चुम्बक" को "चुमक" और "आकर्षित" को "आक्रसत" लिखा था। मैंने उसे सुधरवाया तथा समझाया कि जो शब्द समझ में न आये उसे पुस्तक में से देखकर लिखना चाहिए।

प्रयोग शुरू करवाते हुए, स्वयं शिक्षक महोदय, बच्चों को काफी पूर्व ज्ञान दे देते थे जिससे बच्चे स्वयं तर्क शक्ति का प्रयोग न करके, कहे अनुसार प्रयोग कर रहे थे। मैंने शिक्षक को रोका और बालकों से खुद टोली क्रमांक से प्रश्न पूछे। उत्तर काफी संतोषजनक आये। ऐसा प्रतीत हुआ कि बालकगण अचानक रूचि लेने लगे हैं। मैं और शिक्षक वैसे ही खड़े रहे और बालक खुद प्रयोग पढ़ते और प्रयोग करते गये। छात्रों में उत्तर देते हुए जोश भी दिखाई दिया। लगता था कि शिक्षक खुद बच्चों के उत्तर व उनकी बुद्धिमानी से प्रभावित थे। ऐसा ये छात्र कर लेंगे, उन्हें कल्पना तक न थी।

समय कब बीत गया, सचमुच पता ही नहीं चला। शिक्षक महोदय के साथ किट का सामान लेकर मैं बाहर आया। शिक्षक महोदय ने मुझे आश्वासन दिया कि आगे से वे ऐसा ही करेंगे जैसा उन्होंने, मेरे द्वारा देखा।

उनका यह भी कहना था कि इस वर्ष उन्होंने कक्षा 7 का प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा गत वर्ष पढ़ाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है जिसकी वजह से उन्हें कुछ परेशानियाँ आ रही थी। ●

इसी मासिक गोष्ठी में एक और प्रश्न उठा जिस पर दिलचस्प चर्चा हुई। प्रश्न का विषय एक फ्रांसीसी लेखक की पुस्तक "चन्द्रमा पर राज्य का इतिहास" से उभरा था। इस पुस्तक में लेखक एक चुम्बक के आकर्षण बल से उड़ने वाले विमान का वर्णन करता है, जिस पर बैठ कर एक पात्र चन्द्रमा का सफ़र कर आया। उस विमान की कार्यप्रणाली कुछ इस तरह बयान की गई है। चाँद का सफर करने वाले यात्री ने लोहे की हल्की गाड़ी बनवा ली। उस गाड़ी पर बैठकर यात्री ने चुम्बक के एक गोले को ऊपर उछाला। ऐसा करने से गाड़ी भी खिंच कर गोले के पास पहुँच गई और उसने गोले को और ऊपर फेंक दिया। यात्री जब गोले को हाथ में उठाता तो भी गाड़ी गोले की ओर चल देती। ऐसा करते-करते गाड़ी चाँद के करीब पहुँच गई। तब गाड़ी यात्री समेत तेज़ी से चाँद की ओर गिरने लगी। इससे खतरा हुआ कि गाड़ी समेत यात्री चाँद पर गिर कर चकना-चूर हो जायेगा। तभी यात्री ने चुम्बक के गोले को उछालने की दिशा बदल दी। अब वह उसे चाँद से उल्टी दिशा में इस तरह से उछालने लगा कि गाड़ी के गिरने की रफ्तार एकदम धीरे हो गई। इस प्रकार यात्री बड़े धीरे-धीरे चाँद की सतह पर उतर गया।

यह कहानी सुनने पर कई शिक्षकों को साफ लगा कि ऐसी यात्रा तो संभव नहीं है। पर प्रश्न यह था कि क्यों नहीं है। एक प्रस्ताव यह आया कि गुरुत्वाकर्षण बल के कारण चुम्बक, गाड़ी को ऊपर नहीं खींच पायेगा। मगर चुम्बक तो बहुत शक्तिशाली हो सकता है। कुछ लोगों को लगा कि अधिक शक्तिशाली होने के कारण चुम्बक को उछाल पाना संभव नहीं होगा, क्योंकि गाड़ी उससे चिपकी रहेगी। मगर चुम्बक उछाल पाना तो यात्री के हाथों की शक्ति पर निर्भर करेगा। धीरे-धीरे शिक्षक सही कारण के करीब पहुँचने लगे। एक सर बोले कि अगर शक्तिशाली चुम्बक को किसी कमरे की छत से लटका दिया जाये और यात्री समेत गाड़ी ठीक नीचे हो तो गाड़ी ऊपर आकर्षित होकर खिंच सकती है। तभी एक और प्रश्न उठ गया। अगर गाड़ी से दो खम्बे लगे हों और उनके सहारे चुम्बक लटका हो तो क्या गाड़ी ऊपर उठ जायेगी। प्रश्न यह था कि अगर चुम्बक गाड़ी से लगे खम्बों के माध्यम से लटका है तो क्या वह गाड़ी को ऊपर खींच पायेगा।

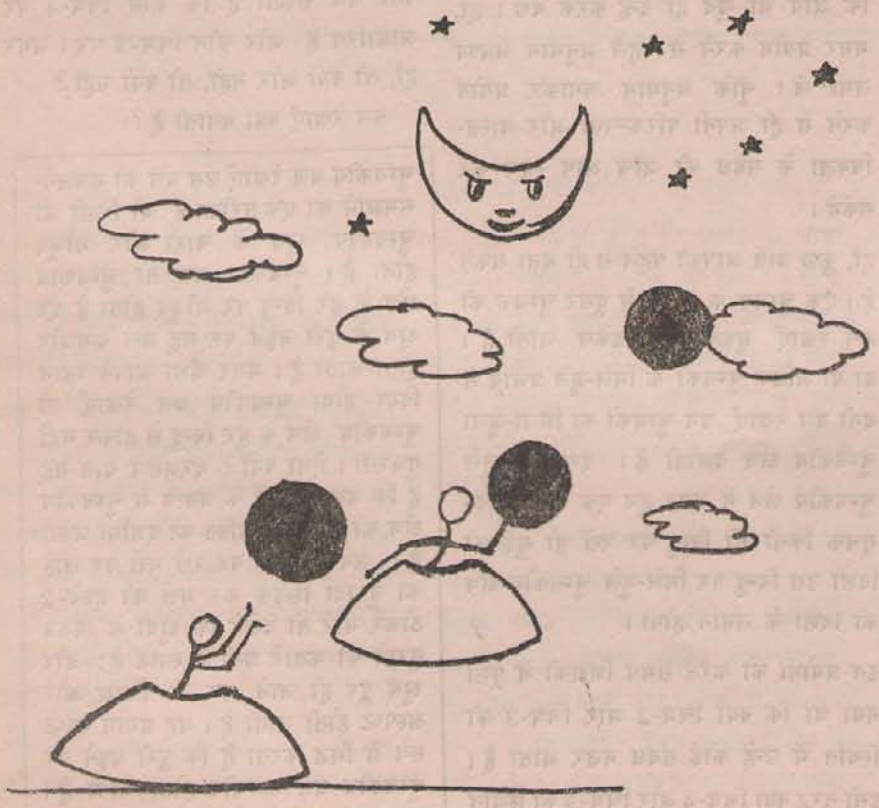

चुम्बकीय उड़न खटोलों से उड़ान की असंभवता का सही कारण बतलाने के लिये एक उदाहरण दिया गया। क्या आपने नाव पर से खड़े होकर तट की ओर कोई चीज फेंकी है? तब आपने महसूस किया होगा कि नाव तट से और दूर खिसक जाती है। फेंकी जाने वाली वस्तु को एक दिशा में धक्का देते हुए आपकी पेशियाँ आपके शरीर को (और साथ ही नाव को) विपरीत दिशा में ढकेलती है। यहाँ क्रिया और प्रतिक्रिया का नियम प्रकट हो रहा है जिसके अनुसार हर क्रिया की उसी के बराबर परन्तु विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है। जब गाड़ी में बैठा व्यक्ति गोले को ऊपर उछालता है (काफी बड़ी शक्ति से, क्योंकि गोला लोहे की गाड़ी की ओर खिंचता है) तो वह अनिवार्य रूप से गाड़ी को नीचे ढकेलता है और फिर एक-दूसरे के आकर्षण के कारण गाड़ी और गोला जब मिलते हैं तो वे उसी आरंभिक स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ से उन्हें अलग किया गया था। इससे स्पष्ट है कि गाड़ी यदि बिल्कुल हल्की भी होती, तो चुम्बक फेंकने से किसी एक स्थान के गिर्द कंपन की गति ही आ सकती थी। इस तरह से उसे किसी एक दिशा में नहीं चलाया जा सकता।

इसी तरह से अगर चुम्बक को लकड़ी के खम्बों से लटकाया जाये जो लोहे की गाड़ी से लगे हों तो गाड़ी बिल्कुल हिलने वाली नहीं। कारण यह है कि चुम्बक का गोला और लोहे की गाड़ी दोनों एक दूसरे को बराबर शक्ति से अपनी तरफ खींचेंगे। खम्बों द्वारा जुड़े होने के कारण गोले और गाड़ी पर पड़ रहे बल, जो विपरीत दिशा में कार्यरत हैं, एक-दूसरे को संतुलित कर लेंगे। हाँ, अगर चुम्बकीय गोला किसी कमरे की छत से लटका हो और लोहे की गाड़ी स्वतंत्र रूप से नीचे रखी हो तो गाड़ी गोले की ओर आकर्षित होकर उससे चिपक सकती है। ज़ाहिर है ऐसा होने के लिये चुम्बकीय गोले की आकर्षण शक्ति पर्याप्त होनी चाहिये। ●

भाषा का विकास

हम भाषा के बदलाव का अध्ययन करते हुए उसकी नियमावली के बदलाव पर तो ध्यान देते हैं, पर उस बदलाव के बहुत सारे पहलुओं को भूल जाते हैं। यह जुड़े हैं भाषा को बोलने वाले समूह के ऐतिहासिक सन्दर्भ से व उनके समाज की सम्प्रेषण की जरूरतों से। चूँकि अलग-अलग सामाजिक परिवेशों में, अलग भाषाएँ पाई जाती हैं इससे सामाजिक परिवेश का भाषा पर प्रभाव स्पष्ट सामने आता है। इन सब बातों का भाषा के स्वरूप और उसके विकास के साथ संबंध है। भाषा का विकास व स्वरूप एक ऐसा मुद्दा है, जो सिर्फ भाषा के ही नहीं, अपितु मानव विकास और मानव-प्रकृति के बिन्दुओं को गहराई से छूता है।

भाषा का उपयोग हम अपने दैनिक जीवन में हर प्रकार के संप्रेषण के लिए करते हैं। जाने कितनी ही भाषाएँ मानव द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं। सामान्य तौर पर भाषा के बारे में बहुत गहराई से सोचा नहीं जाता। शायद भाषा को, शब्दों के व्यवस्थित नियमों (जिसे व्याकरण) के तहत व्यक्त करने व निर्धारित लिपि में लिखने तक ही देखा जाता है। किन्तु भाषा के इससे बहुत अधिक पहलू हैं। उदाहरणार्थ भाषा में उन सामाजिक परिस्थितियों की झलक मिलती है, जिसमें वह भाषा विकसित हुई है। उसमें उस समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज व इतिहास की भी झलक मिलती है। इन सबके अलावा भाषा के अध्ययन से खुद भाषा के विकास का इतिहास सामने आता है। उसके अध्ययन से यह भी उभरता है कि किसी भाषा को स्थापित करने वाले कौन लोग रहे हैं और वह किस आर्थिक-सामाजिक समूह के प्रतिनिधि थे। भाषा की शब्दावली में इस प्रकार के अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं। इनमें से एक उदाहरण हम सिर्फ इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए दे रहे हैं। आम बोल-चाल की भाषा, जिसे हम शायद हिन्दुस्तानी कह सकते हैं, में "कमीना" एक गाली के रूप में उपयोग में लाया जाता है। उत्तरप्रदेश की एक खेतिहर मजदूरों की जाति है जो "कामीन" नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार उदाहरण अंग्रेजी से लेते हैं, विलेन शब्द का उपयोग खलनायक के लिए होता है और अंग्रेजी जमीदारों व बड़े-बड़े भूस्वामियों के यहाँ काम कर रहे गुलामों को भी विलेन कहा जाता था। यह मात्र दो उदाहरण हैं, शब्दावली के इन सवालों के एक ही पहलू पर। भाषा के संदर्भ में और भी बहुत से सवाल हैं, उसके विभिन्न पहलुओं व अंतर्सम्बन्ध से संदर्भित जिन पर विचार करना आवश्यक है।

इस लेख में हम भाषा की उत्पत्ति के सम्भव कारण व तरीकों के बारे में मोटे रूप में देखेंगे। चूँकि आज हम एक काफी विकसित भाषा प्रयोग करते हैं, इसलिए यह कल्पना करना मुश्किल हो जाता है कि ऐसा भी समय रहा होगा जब कोई भाषा नहीं थी। वह परिस्थितियाँ क्या थीं जिन्होंने मनुष्य को भाषा विकसित करने के लिए मजबूर किया? इस मुद्दे को समझने में हमें पशुओं के व्यवहार का अवलोकन करने से कुछ दिशा मिल सकती है। वे किन स्थितियों में और किस तरह की आवाजें निकालते हैं? मनुष्य की भाषा (बोली) और पशुओं की आवाज में क्या समानता है और क्या फर्क है? क्या कभी मनुष्य भी पशुओं जैसी ही आवाज भर निकाल पाता था? क्या मनुष्य जाति के प्राकृतिक विकास के साथ-साथ ही उसकी भाषा विकसित हुई। आदिकाल से लेकर अब तक के मानव समाज के विकास के साथ-साथ मनुष्य की भाषा का विकास कैसा हुआ? इन दोनों में कोई संबंध है क्या? भाषा बदलती है–तो किन कारणों से?

हम भाषा के बदलाव का अध्ययन करते हुए उसकी नियमावली के बदलाव पर तो ध्यान देते हैं, पर उस बदलाव के बहुत सारे पहलुओं को भूल जाते हैं। यह जुड़े हैं भाषा को बोलने वाले समूह के ऐतिहासिक संदर्भ से व उनके समाज की सम्प्रेषण की जरूरतों से। चूँकि अलग-अलग सामाजिक परिवेशों में, अलग भाषाएँ पाई जाती हैं इससे सामाजिक परिवेश का भाषा पर प्रभाव स्पष्ट सामने आता है। इन सब बातों का भाषा के स्वरूप और उसके विकास के साथ संबंध हैं। भाषा का विकास व स्वरूप एक ऐसा मुद्दा है जो सिर्फ भाषा के ही नहीं, अपितु मानव विकास और मानव-प्रकृति के बिन्दुओं को गहराई से छूता है।

इन मुद्दों को लेकर कई परिकल्पनाएँ हैं? एक परिकल्पना तो यही है कि जो कुछ भी आज हमारे सामने है वो हमेशा से ऐसा ही था और रहेगा। मानव समाज और खुद मानव कैसे बना, क्यों बना–ऐसे सवालों का इस मान्यता के तहत कोई स्थान ही नहीं है। इसी प्रकार से कुछ और कल्पनाएँ हैं, जैसे-मानव सर्वशक्तिमान ईश्वर द्वारा बनाया गया है और उसी ईश्वर ने खुश होकर मनुष्य को ज्ञान का वरदान दिया। यानी, जो कुछ है, प्रभु की देन है। प्राचीन कहानियों में एक ऐसा भी बड़ा पुट रहा है जिसमें किसी व्यक्ति द्वारा सीखे गए कौशल को दैव कृपा या दैवीय शक्ति की संज्ञा दी गई है। साधना को हमेशा एक आध्यात्मिक स्वरूप देकर प्रस्तुत किया गया है, औषधि के ज्ञान कौशल को अश्विनिकुमार के वरदान की संज्ञा दी गई है। और इसी तरह,

भाषा व उसे उपयोगों को सरस्वती देवी के वरदान की।

लेकिन हम अगर इतिहास में झाँककर देखें तो पाएँगे कि न तो सब कुछ आज जैसा था और न ही भगवान की कृपा से अचानक बन गया। और यह किसी अकेले व्यक्ति के कौशल या शौर्य का भी सवाल नहीं है कि उसने कुछ सिद्धि प्राप्त कर ली या कोई खोज की। ऐसा लगता है कि मानव ने जो भी बनाया अपने सामूहिक प्रयास और चेष्टा से बनाया। अपनी अहम जरूरतों को पूरा करने के लिए बनाया। भाषा का विकास भी इंसान व प्रकृति के पारस्परिक अंतर्सम्बंध व सामाजिक विकास के कारण ही हुआ। इसी से उभरती है एक और परिकल्पना, मानव ने श्रम के समय सहयोग के लिए एक-दूसरे से सम्प्रेषण की आवश्यकता महसूस की। प्राकृतिक परिस्थितियों में मानव बहुत शक्तिशाली नहीं था और न ही उसके पास बचने के कोई साधन मौजूद थे। वह न तो तेज भाग पाता था और न ही कुछ जानवरों की तरह पेड़ों पर चढ़कर रह पाता था। उसकी शारीरिक बनावट सपाट मैदान पर रहने के लिए उपयुक्त थी। इसलिए अपने बचाव के लिए मनुष्य को पारस्परिक सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता थी। उसका अकेले बच पाना मुश्किल था। (कई पशु भी तरह-तरह के समूहों व गुटों में रहकर बचाव करते हैं।) मानव मस्तिष्क लेकिन इतना विकसित था कि उसके उपयोग की बहुत-सी सम्भावनाएँ थीं। इसके अलावा मनुष्य के हाथ के अंगूठे के स्वतंत्र रूप से घूम पाने के कारण हाथ के उपयोग की कई नई सम्भावनाएँ सामने आईं–जो कि पशुओं को उपलब्ध नहीं थीं। मनुष्य के लिए प्रकृति में ही उपस्थित वस्तुओं का औजार के रूप में प्रयोग करने के अलावा, प्रकृति में उपलब्ध सामग्री व साधनों से खुद औजार बनाना भी सम्भव था। कुछ पशु प्रकृति में उपलब्ध वस्तुओं का प्रयोग इस तरह से करते हैं कि उसे औजार की संज्ञा दी जा सकती है, लेकिन औजार बनाना उनके लिए संभव भी नहीं है और बहुत जरूरी भी नहीं। उनके पास तो जिन्दा औजार होते हैं–दाँत, पंजे आदि, आदि। इसके अलावा जानवरों को अपने बच्चों को दाँत व पंजों का उपयोग करना सिखाना नहीं पड़ता, वे तो यह देख-देख कर ही सीख जाते हैं। यही कारण है कि पशुओं के लिए बोलना जानना जरूरी नहीं है। पर मनुष्य के लिए दूसरे मनुष्यों व अपने बच्चों को औजार बनाना सिखाना जरूरी था और उनका उपयोग करना सिखाना जरूरी था। इस जरूरत ने भी उसे भाषा विकसित करने के लिए बाध्य किया।

यह भाषा के विकास का एक पहलू है (जो मात्र दो मोटी परिकल्पनाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है)–पर ऐसे ही कई और महत्वपूर्ण पहलू भी हैं। इस पहलू पर भी बहुत-सी बातें छूट गई हैं, जो काफी जरूरी हैं। इन पर व इस विषय के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना जरूरी है जिन्हें यहाँ या तो छुआ ही नहीं गया है, या छू के छोड़ दिया गया है। हमारी अपेक्षा है कि और लोग इन संदर्भ में कुछ कहेंगे और शायद इससे ज्यादा गहराई से।

—हृदयकांत दीवान
होशंगाबाद

उत्तर "दौड़ सवाल जवाब के"

(1) केरल (2) मराठी (3) आन्दोलन के समय चौरी चौरा बिहार में था। राज्य पुनर्गठन के बाद उत्तर प्रदेश में आ गया है। शराब की बिक्री बन्द कराने और खाने के सामान की बढ़ती हुई कीमतों के खिलाफ़ लोगों ने आन्दोलन किया था। पुलिस ने आन्दोलनकारियों के नेता भगवान अहीर को पकड़कर बहुत मारा। इस घटना से जन आक्रोश भड़क उठा। आन्दोलनकारियों की भीड़ ने पुलिस थाना घेर लिया था। पुलिस ने आन्दोलनकारियों पर गोली चलाई। तब हिन्सा भड़क उठी और भीड़ ने पुलिस थाने में आग लगा दी। इस घटना में 22 पुलिस वाले मारे गए थे। बाद में 172 आन्दोलनकारियों को फाँसी की सजा दी गई। जिसमें से 19 लोग फाँसी पर लटकाए गए और बाकी को काले पानी की सजा दी गई। काले पानी की सजा देकर उन्हें अण्डमान निकोबार भेज दिया गया। आन्दोलन में हिंसा होने से गांधीजी ने आन्दोलन वापिस ले लिया। गांधीजी के इस कदम पर देश में तीखी प्रतिक्रिया हुई और लोगों के बीच गहरे मतभेद उभर कर आए। (4) दक्षिण अफ्रीका (5) ग (6) $6\frac{2}{3}$ दिन. (7) प्रदेश में पहली बार हरदा नगर पालिका ने 1928 में अंडरग्राउण्ड ड्रेनेज (नालियाँ) बनवाई थीं।

दिलचस्प बात यह है कि नगर के पुराने हिस्से में तो बन्द नालियाँ हैं, परन्तु नगर की नई बस्तियों में या तो खुली हुई नालियाँ हैं या हैं ही नहीं।

यह खिलवाड़ क्यों ?

ग्रामीण क्षेत्रों में फैली अज्ञानता, निरक्षरता को दूर करने के लिए प्रदेश में साक्षरता बढ़ाने के अन्तर्गत दर्ज संख्या वृद्धि अभियान, प्रौढ़ शिक्षा, औपचारिक शिक्षा इत्यादि अभियान जोर-शोर से चलाये जा रहे हैं, जिससे ग्रामीण लाभ उठाकर महाजनों, पटेलों की दासता के आगे अंगूठा न टेक सकें। और बच्चे देश के उत्थान में हाथ बँटाएँ तथा अन्य देशों की तरह हमारा देश भी साक्षरता की शृंखला में जुड़ सके।

शासन का यह प्रयास काफी सराहनीय है। लेकिन शासन इस बात से भी बेखबर नहीं है कि क्या इसकी बुनियाद वास्तव में मजबूत हो रही है या सिर्फ कागजों तक ही सीमित रह जायेगी ?

शासन की ओर से प्राय: प्रत्येक गाँवों में स्कूल एवं औपचारिक केन्द्र तो खोल दिये हैं। लेकिन शाला में उचित सामग्री जैसे ब्लैक बोर्ड, टाट पट्टी, रोलर बोर्ड, टेबिल-कुर्सी, पाठय-पुस्तकें नहीं हैं। यदि है भी तो सीमित या खारिज स्थिति में। शाला भवन की बजाय गाँव प्रमुख सार या दहलान में। एक शिक्षक और चार या पाँच कक्षाएँ क्या नवीन बच्चों को स्कूल का किताबी ज्ञान अनूठा लगकर उनके मानस पटल को एकाग्रता की ओर ले जा सकता है।

शिक्षक को बीच-बीच में जनगणना, दलिया, पशु गणना, चुनाव या शासकीय मीटिंग इत्यादि में योगदान देना पड़ता है। तब ये कार्य बच्चों की पढ़ाई में अच्छा खासा व्यवधान पैदा कर देते हैं। (कहीं-कहीं तो दो दिन के अवकाश में पूरे हफ्ते शाला बंद रहती है)।

जैसे-तैसे दिसम्बर माह तक बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान दे भी दिया जाए, तो पिछड़े इलाकों में जनवरी माह में फसल का मौसम आ जाने के कारण साल भर की कमाई का प्रश्न खड़ा हो जाता है। महुआ, गुल्ली, अचार, चैत करने जाने वाले बच्चों की अनुपस्थिति में शिक्षक किसकी परीक्षा ले ?

क्या औपचारिक शालाएँ या प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहे हैं या कागजों तक सीमित हैं ?

निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. बच्चों की एकाग्रता और उनमें पढ़ाई के प्रति रुचि लाने के लिए शाला भवन आवश्यक हैं। अन्यथा किसी की सार में किसी के टुकड़ों पर भला पेट कहाँ तक भरता है।

2. वैसे शाला बंद नहीं रहना चाहिए। फिर भी एकल स्कूल में अवकाश पर गए शिक्षक अनुपस्थिति में शाला बंद पाई जाती है। अत: ऐसे स्कूलों में अन्य शिक्षक की व्यवस्था आवश्यक रूप से करवाना चाहिए।

3. हर दो कदम पर यानी गाँव-गाँव में शाला खोलने की बजाय एक जगह शाला खोल-कर दो या तीन शिक्षकों को रखकर बच्चों की पढ़ाई मजबूत की जा सकती है।

4. होशंगाबाद विज्ञान को आर्ट या कामर्स विषय के शिक्षक पढ़ाते हैं, जबकि प्रदेश में कहीं-कहीं विज्ञान विषय की डिग्री लेकर प्राइमरी कक्षाओं का संचालन कर रहे हैं। यह अव्यवस्था क्यों ?

5. समय-समय पर खास कर दूर-दराज क्षेत्रों के स्कूलों में संबंधित अधिकारियों के दौरे आवश्यक हैं।

––एच. आर. कहार
विज्ञान शिक्षक
शा. प्रा. शाला
चौकीपुरा आ.जा.क.वि.

ग्रामीण शिक्षक की दशा

ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले शिक्षकों के सामने कई समस्याएँ रहती हैं। इन समस्याओं के रहते भी वह अपने काम में संलग्न है। मैं स्वयं एक अर्से से गाँव में अध्यापन कर रहा हूँ। मैंने कुछ मुख्य समस्याएँ जो अनुभव कीं, उनका एक सार यहाँ प्रस्तुत है :

आवास समस्या:–ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षक को रहने के लिए मकान उपलब्ध नहीं होता है। यदि मकान मिल भी जाता है तो कच्चा मकान उपलब्ध होता है।

पढ़ाई की समस्या:–ग्रामों में प्राइमरी (प्राथ-मिक) और पूर्व माध्यमिक स्कूल होते हैं? जिनमें समुचित साधनों का अभाव होता है। कुछ ग्रामों में हायर सेकेंडरी स्कूल हैं। इनकी संख्या अल्प (कम) है। शिक्षक अपने बच्चों को कहाँ पर पढ़ावें शहर में या गाँव में ? ग्राम में शिक्षक अपने बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहता है, क्योंकि शालेय वातावरण पढ़ाई योग्य नहीं होता है। वह बच्चों को शहर में भेजता है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक कभी ग्राम में रहता है, तो कभी शहर में अपने बच्चों के पास।

चिकित्सा का अभाव:–ग्रामीण क्षेत्र में प्राथ-मिक स्वास्थ्य केन्द्र होते हैं। इन स्वास्थ्य केन्द्र में पर्याप्त दवाइयों का अभाव होता है। इतना ही नहीं, इन केन्द्रों पर योग्य अनुभवी डॉक्टर नहीं होते हैं। स्वास्थ्य केन्द्र पर मिडवाइफ या नर्स नियुक्त होती हैं। जिन्हें चिकित्सा का पूर्ण ज्ञान, योग्यता व अनुभव नहीं होता है। ऐसी दशा में शिक्षक का एवं उसके परिवार के सदस्यों का इलाज समुचित रूप से नहीं हो पाता है। वह अपने इलाज के लिए व दवाई खरीदने के लिए शहर की शरण लेता है। मेडीकल बिल बनवाने के लिए डॉक्टर के पास जाता है। मेडीकल बिल पास करवाने के लिए अपने अधिकारी के कार्यालय का चक्कर लगाता है। मेडीकल बिल पास करवाने में क्या-क्या मुसीबत उठानी पड़ती है।

सुविधाओं का अभाव:–ग्रामीण क्षेत्र में बिजली व नल (पानी) की व्यवस्था नहीं होती है। कुछ ग्रामों में बिजली अवश्य पहुँच गई है। फिर भी ग्राम के प्रत्येक घर में उसका प्रवेश नहीं हो पाया है। पानी का एकमात्र साधन है कुआँ। मकानों में पाखाना (टट्टी) की व्यवस्था नहीं होती है। खासकर बारिश में पाखाना के लिए कीचड़ में गाँव के बाहर जाना पड़ता है।

गाँव में बाजार का न लगना (कुछ ग्रामों में बाजार लगने लगे हैं)। शिक्षक को सामग्री क्रय करने के लिए आस-पास के बाजार में जाना पड़ता है। ग्रामों में यातायात के साधनों का अभाव होता है। रेल, बस, यहाँ पर सुलभ नहीं होती है। यातायात के साधन घोड़ा, बैलगाड़ी, साईकल हैं। दैनिक उपयोग की वस्तुएँ जैसे–सब्जी, फल, दूध इत्यादि प्राप्त नहीं होते हैं, जबकि ये वस्तु ग्राम में ही पैदा होती हैं। गाँव वाले ये वस्तुएँ शहर में बेच आते हैं। गाँव की अजीब (विचित्र) स्थिति है। गाँव की वस्तु गाँव में ही उपलब्ध नहीं हो पाती है।

उक्त समस्याओं से जैसे-तैसे हम निपट भी लेते हैं। पर अध्यापन के लिए उपयुक्त साधन और माहौल का भी अभाव कई बार सामने होता है। ऐसे कुछ अभावों के बारे में हम सब जानते हैं। इन पर भी एक नजर:–

शाला भवन:–अधिकाँश ग्रामों में शाला भवन की दशा ठीक नहीं होती है। शाला भवन मरम्मत के अभाव में व समुचित देखभाल एवं रख-रखाव के अभाव में धराशायी हो रहे हैं। कई स्थानों पर तो शाला भवन गौशाला के समान हैं। जहाँ पर विद्यार्थियों के बैठने की उचित व्यवस्था तक उपलब्ध नहीं है। शाला भवन में बारिश में छतों से पानी गिरता रहता है। गर्मी के मौसम में बालक धूप में तपते रहते हैं। शाला भवन में मूत्रालय और शौचालय का अभाव ही नहीं है, वरन् यहाँ तक कि शिक्षकों एवं बालकों को निस्तार के लिए उपयुक्त स्थान भी नहीं रहता है।

शिक्षकों की संख्या कम होना:–ग्रामीण शालाओं में शिक्षकों की संख्या अपेक्षित संख्या से कम होती है। कहीं पर अंग्रेजी विषय का शिक्षक नहीं है या गणित, या विज्ञान शिक्षक नहीं है तो कहीं पर एक ही विषय के दो शिक्षक होते हैं। असामान्य वितरण से उत्पन्न परिस्थिति एक जटिल समस्या है। इस कारण से कमी वाली शाला में शिक्षक को शिक्षण कार्य अधिक करना पड़ता है। जिससे उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव (असर) पड़ता है।

सामग्री का अभाव:–ग्रामीण शालाओं में सामग्री का अभाव भी है। प्राथमिक शालाओं में बच्चों के बैठने के लिए पर्याप्त टाट-पट्टी उपलब्ध नहीं है। बच्चे नीचे बैठते हैं। टेबिल कुर्सी, बेंच इत्यादि फर्नीचर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने का तो सवाल ही नहीं है। शिक्षण सामग्री जैसे–नक्शे, चार्ट, मॉडल, श्यामपट (ब्लैक बोर्ड), चॉक-डस्टर, ब्लैक बोर्ड स्याही इत्यादि आवश्यकतानुसार उपलब्ध नहीं है। इन सारी मुसीबतों से जूझता हुआ ग्रामीण शिक्षक शिक्षा के पुनीत यज्ञ में आहुति दे रहा है।

उचित वातावरण का अभाव:–पारिवारिक वातावरण पढ़ाई-लिखाई का नहीं होता है। माता-पिता बच्चों से खेती-बाड़ी का कार्य कराते हैं। बच्चा सुबह होते ही खेत में पहुँच जाता है। वह मवेशी चराता है, या घास काटता है और खेती के अन्य कार्य करता है। गाँव का वातावरण निराला ही दृष्टिगोचर होता है। खेत से बालक 10.30 या 11 बजे ही शाला में पहुँचता है। शारीरिक श्रम से हारे-थके हुए बालक का मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगता है। माता-पिता शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते हैं। वे अपने बच्चों की पढ़ाई पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। शालेय वातावरण भी बालक का मानसिक विकास करने की स्थिति में नहीं होता है। ऐसे वातावरण में शिक्षक शिक्षण कार्य उचित ढंग से कैसे करें?

लहरीशंकर तिवारी
प्रधानाध्यापक
आई. ई.एम. स्कूल सांवलखेड़ा

(पृष्ठ 13 का शेष)

तक यह कोई नहीं जान पाया है कि वह सिर्फ गंध को ही ले जाती है या किसी और चीज को भी। सतर्क प्रकृतिप्रेमियों ने कीटों को हवा के खिलाफ बड़ी-2 दूरियों तक उड़कर मादाओं या भोजन की तलाश में जाते देखा है।

1936 की गर्मियों में हमारे एक बाल-जीव-विज्ञानी ने गोबर के ढेर पर 30 नीली-हरी मक्खियाँ पकड़ीं। उसने उन पर मैदा छिड़क दिया और अलग-2 दूरियों से उन्हें 5-5 के झुंड में गोबर पर वापस उड़ आने दिया और इस तरह यह साबित किया कि मक्खियों को गोबर से पौन किलोमीटर दूर भी ले जाया जाए, तब भी वे उसे फिर ढूँढ सकती है। मैदे के कारण उसे अपनी मक्खियों को पहचानने में मदद मिली, क्योंकि वह उनके बालदार बदनों से चिपक गया था।

प्रयोगों से पता चला है कि अगर कीटों की शृंगिकाओं पर पैराफ़िन की परत चढ़ा दी जाए, तो वे भोजन का पता लगाने की अपनी सारी क्षमता को गंवा देते हैं, चाहे उसकी गंध कितनी ही तेज क्यों न हो।

मैं क्या करूँ ?

श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद देश में पागलपन का जो ज्वार उठा, उससे मासूम बच्चे भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे । मासूस बच्चों के कोमल हृदय पर अंकित द्वेष और बदले की भावना ने एक शिक्षिका को विचलित कर दिया । उसकी व्यथा और बेबसी उसके शब्दों में फूट पड़ी है—"पर क्या मात्र एक ऐसी बात है जो होती रहती है और धीरे-धीरे भूल जाती है? क्या यह जहरीली भावनाएँ क्षणिक थीं? क्या यह घटना धीरे-धीरे धूमिल पड़ जाएगी या फिर हम किसी ज्यादा गहरे बीजों का बोया जाना देख रहे हैं? मैं क्या करूँ? क्या इन बच्चों से दुबारा बात करूँ? क्या इस मसले पर उनसे फिर चर्चा करूँ या फिर कुछ समय रुककर देखूँ? मैं अभी भी सोच रही हूँ ।"

(यदि आप उसकी मदद कर सकते हैं, तो अवश्य कीजिए–सम्पादक)

स्कूल में आज भूगोल का एक और पाठ पढ़ाना शुरू हुआ जो रबी और खरीफ फसलों के बारे में था। गन्ना-उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब (आगे की बेंच से बहुत धीमी आवाज में, पंजाब का नाम तो मिटा दो), हरियाणा, कर्नाटक के कुछ हिस्से आदि-आदि में होता है।

पाठ आगे बढ़ा और इसी प्रकार के दबे-छुपे कथन जारी हैं, जिन्हें तूल नहीं दी जाती। मैंने तय किया कि ऐसे कथनों को अनदेखा कर दूँगी। इस हफ्ते 12-18 नवम्बर में कई और वाकयात इसी प्रकार के हुए, जिन्हें अनसुना कर दिया गया। मुझे लग रहा था कि यह नासमझ बच्चों के कथन हैं, जो उन्होंने यहाँ-वहाँ से सुन कर बोल दिए हैं और मैं उन पर बातकर , बगैर वजह उन्हें ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहती थी।

शनिवार को हिन्दी की कक्षा में मैंने मुहावरे शुरू किए और उन पर आधारित वाक्य लिखवाए। एक मुहावरा है पैर उखड़ना- उस पर आधारित एक वाक्य-पंजाब के तो पैर उखड़ गए।

अब मुझे लगने लगा कि पंजाब बहुत बार नकारात्मक रूप में बातचीत में आ रहा है। मुझे लगा कि बच्चों से बात ही करनी चाहिए। इसलिए मैंने बच्चों से पंजाब के प्रति उनके रवैये का कारण पूछा। जो हुआ उसने मुझे कुछ समय के लिए हतप्रभ कर दिया -पंजाब और सिखों पर एक जोरदार हमला। "मार दो सालों को। इंदिरा गाँधी को मारने की हिम्मत कैसे हुई। और अब राजीव गाँधी को मारेंगे। जरा सामने तो आए–जगजीत सिंह, साले को मारे नहीं तो देखना" और कुछ और बातें भी। यह नहीं कि एक या दो बोल रहे हों, पर सारे के सारे एक साथ। कक्षा में जैसे तूफानी शोर मच गया और मेरे लिए एक भी शब्द बोल पाना असम्भव ही हो गया था। स्टेशन के पास रहने वाले दो लड़कों ने बताया कि कैसे उन्होंने पठानकोट एक्सप्रेस में से सरदारों को खींचकर निकाला और खूब मारा। वह लगभग डींग मार कर बता (गप मार) रहे थे। लड़कियाँ भी काफी सहमत थीं और उसी तरह के भाव व्यक्त कर रही थीं। मैं सुनती रही और विश्वास नहीं कर पाई के यह मेरी पाँचवीं कक्षा के बच्चे हैं। उम्र में नौ-दस साल के।

फिर मैंने उन्हें रोका और पूछा कि यदि चौथी कक्षा का बच्चा चोरी करते हुए पकड़ा जाए और शहर में खबर फैल जाए और होशंगाबाद के लोग कहें कि इस शाला के बच्चे चोर हैं तो उन्हें कैसा लगेगा? उन्होंने एकदम कहा "हम सबको क्यों चोर कहा जाए, हमने तो चोरी नहीं की।" अगर एक बच्चा चोरी करता है तो हम सब क्यों चोर माने जाएँ आदि-आदि। मैंने पूछा कि यदि ऐसा है तो फिर वह इंदिरा गाँधी की हत्या के लिए सब सरदारों को क्यों जिम्मेवार मान रहे हैं। आखिर सरदारों के एक छोटे गुट ने ही तो इंदिरा गाँधी को मारा है। उन्होंने इस तुलना को मानने से बिलकुल इंकार कर दिया और कहते रहे कि इस स्थिति में बात अलग है।

मैं देख रही थी कि स्थिति गर्म हो रही है और काफी संवेदनाएँ निकल रही थीं बच्चों के अंदर से। मुझे यह भी लगा कि मैं अपनी बात उन्हें बिलकुल नहीं समझा पा रही हूँ और इस मसले में तर्क व तथ्यों का कोई स्थान नहीं है। मैंने धीरे-धीरे चर्चा को ठंडा होने दिया और पाठ जारी रखा।

पर क्या मात्र एक ऐसी बात है जो होती रहती है और धीरे-धीरे भूल जाती है? क्या यह जहरीली भावनाएँ क्षणिक थीं? क्या यह घटना धीरे-धीरे धूमिल पड़ जाएगी या फिर हम किसी ज्यादा गहरे बीजों का बोया जाना देख रहे हैं? मैं क्या करूँ? क्या इन बच्चों से दुबारा बात करूँ? क्या इस मसले पर उनसे फिर चर्चा करूँ या फिर कुछ समय रुक कर देखूँ। मैं अभी भी सोच रही हूँ।

—एक शिक्षिका

एक पिता की दुविधा

पिताजी बेटे को पढ़ाने बैठे थे। बेटा भूगोल का पाठ पढ़ रहा था। एक प्रश्न था "होशंगाबाद ज़िले में कितनी तहसीलें हैं?" पिताजी ने पढ़ाया छः तहसीलें हैं, हरदा, सिवनीमालवा, होशंगाबाद, सोहागपुर, पिपरिया और टिमरनी। टिल्लू ने याद कर लिए सब तहसीलों के नाम। अगले दिन कक्षा में मास्टरजी ने पूछा "बताओ होशंगाबाद में कितनी तहसीलें हैं ?" तो टिल्लू ने झट हाथ ऊपर किया और सबसे पहले उत्तर दिया "छः तहसीलें"। फिर उसने सब तहसीलों के नाम भी गिनाये। मास्टर साहब सुनकर बोले, अरे भई किताब में तो केवल चार ही तहसीलें दी हैं, यह तुम छः कहाँ से ले आये। बेटा, पुस्तक आँखें खोलकर पढ़ा करो।"

टिल्लू जब घर पहुँचा तो पिताजी से नाराज़ था। बोला "मैं तुम से अब नहीं पढ़ूँगा। डाँट पड़वा दी मुझको। आप मुझको ठीक-ठीक जानकारी नहीं देते। मास्टर साहब तो कहते हैं कि होशंगाबाद में केवल चार तहसीलें हैं।"

टिल्लू ने तो अपना हल ढूँढ़ लिया। उसे तो मास्टर साहब की परीक्षा पास करनी थी। मगर टिल्लू के पिताजी बड़ी दुविधा में पड़े हुए हैं। टिल्लू की पुस्तक 1977 की छपी हुई है जब होशंगाबाद में सचमुच ही चार तहसीलें हुआ करती थीं। अब वहाँ छः तहसीलें हैं। टिल्लू के पिता के सामने कई सवाल खड़े हो गये हैं।

: शिक्षा विभाग क्यों पुरानी जानकारी बच्चों को दिये जा रहा है?

: अगर पुस्तक पुरानी हो भी गई तो क्या मास्टर साहब को सही जानकारी नहीं देनी चाहिये?

: क्या ग़लत जानकारी टिल्लू को याद करने दें या सही जानकारी देकर परीक्षा में नम्बर कटने की संभावना पैदा करें?

क्या टिल्लू के पिताजी की आप कुछ मदद कर सकते हैं?

पिटाई खाने की सम्भावना

संयोग और संभाविता अध्याय चल रहा था। शिक्षक उदाहरण देकर बालकों को संयोग और संभाविता के बारे में समझा रहे थे। जब शिक्षक बालकों को समझा चुके तब एक बालक ने नीचे लिखा उदाहरण देकर इसकी पुष्टि इस प्रकार की;

उदाहरण :

एक बार गुरुजी ने प्रश्नों के उत्तर याद करने को दिया। हमने उन्हें याद नहीं किया। घर से जब स्कूल चले तो पूरी संभावना थी कि आज अपनी पिटाई होगी, पर स्कूल में आकर पता लगा कि आज गुरुजी छुट्टी पर हैं। यह संयोग की बात थी कि गुरुजी छुट्टी पर चले गये और हम पिटाई से बच गये।

राजेन्द्रकुमार दुबे
कक्षा-आठवी
शास. उ. बुनियादी शाला-छीपावड़

सबसे अच्छा गेहूँ

० भगवान प्रियभाषी

कृषि विश्वविद्यालय के स्नातकों का एक दल क्रियात्मक प्रशिक्षण के लिए गाँव में आया हुआ था। खेतों की मेड़ पर बैठे लम्बे बालों वाले, चश्मे लगाए और बेल-बाटम पहने अपटुडेट युवकों को देखकर गाँव के कुछ लोग भी उनके आसपास एकत्र हो गए थे। प्रशिक्षक के हाथ में पाँच-छः किस्म की गेहूँ की बालियाँ थीं और वो बता रहे थे–

ये तीन सौ सत्तावन किस्म का गेहूँ है। ये कल्याण है। ये देशी...गुण....अवगुण...इतना बीज, पानी, खाद...बोने काटने का समय आदि। नवयुवक बहुत ध्यान से देख-सुन रहे थे। भीड़ में फुसफुसाहट-सी होने लगी थी... अरे...ये बातें तो हमारे बच्चे तक जानते हैं, यही पढ़ाई होती है क्या? तभी प्रशिक्षक ने प्रश्न उछाला–यह सब कुछ जान लेने के बाद...किस किस्म की गेहूँ सबसे अच्छी कही जा सकती है?

प्रशिक्षार्थियों में कानाफूसी शुरू हो गई। वो तय नहीं कर पा रहे थे...सभी में कुछ अच्छाई थी तो कुछ कमियाँ भी...काफी देर हो गई, तभी एक बूढ़ा खेतिहर मजदूर फटे चिथड़ों में लिपटा एकाएक आगे बढ़ा और चिल्लाता हुआ बोला–मैं बताऊँ साब–सभी निगाहें उसकी ओर उठ गई थीं, संयत होता हुआ वह बोला–वही गेहूँ सबसे अच्छा होता है जिससे दो जून पेट भर जाए। और अपने बोझिल कदमों को उठाता एक ओर बढ़ गया।

(लघु आघात से साभार)

पूरनचंद, भिलाई (दुर्ग)

० तड़ित चालक के सिरे नुकीले क्यों बनाए जाते हैं ?

— जैसा कि तुम जानते हो तड़ित चालक ऊँची इमारतों पर लगाया जाता है, जिससे उनको बिजली गिरने से होने वाले नुकसान से बचाया जा सके। तड़ित चालक विद्युत की सुचालक धातु की एक छड़ होती है। इसका एक सिरा पृथ्वी के सम्पर्क में रहता है। दूसरा सिरा जो नुकीला होता है, वह ऊपर की ओर होता है।

तुमने अक्सर सुना होगा कि बिजली गिरने से कहीं कोई झाड़ गिर गया या मैदान में चरता हुआ बैल मर गया। वास्तव में होता यह है कि बरसाती बादलों में विभिन्न कारणों से विद्युत आवेश उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि तुम जानते हो विपरीत आवेश एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। बादलों में उत्पन्न विद्युत आवेश किसी भी चालक के माध्यम से पृथ्वी में या विपरीत आवेश के किसी अन्य बादल में जाने की कोशिश करता है। इसके लिए वह सबसे सरल रास्ता ढूँढ़ता है। ऐसा रास्ता जिसमें विद्युत आवेश के बहने में सबसे कम प्रतिरोध हो। जब आवेश ज्यादा हो जाता है तो यह कभी-कभी पृथ्वी तक पहुँच जाता है और इसी को बिजली गिरना कहा जाता है। वैसे तो हवा विद्युत की कुचालक है और इस माध्यम से होकर विद्युत प्रवाहित नहीं हो सकती। किन्तु आवेश अत्यधिक होने पर वायु की प्रतिरोधक क्षमता उसे बहने से रोक नहीं पाती। वैसे भी सूखी हवा की अपेक्षा गीली हवा ज्यादा अच्छी चालक होती है और बरसात की हवा भी नम होती है। इसलिए आवेश का प्रवाहित होना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। चूंकि नुकीले सिरे से आवेश आसानी से लिया जाता है, इसलिए तड़ित चालक के सिरे नुकीले बनाए जाते हैं। बादलों के अतिरिक्त आवेश के लिए तड़ित चालक का नुकीला सिरा सबसे सरल रास्ता होता है, इसलिए वह उस माध्यम से सीधा पृथ्वी में चला जाता है। यह तो हुआ तड़ित चालक के द्वारा मकान आदि को बिजली गिरने से बचाना। क्या उपरोक्त जानकारी के आधार पर बता सकते हो कि आकाश में बिजली क्यों चमकती है और उसका पथ टेढ़ी-मेढ़ी रेखा में ही क्यों होता है ?

० क्या वस्तु का अपना कोई रंग होता है जिसे हम अपने नेत्र से देख पाते हैं ?

— हम वस्तुओं को किसी रोशनी में ही देख पाते हैं चाहे यह रोशनी सूर्य की हो या बल्ब या अन्य किसी माध्यम से मिल रही हो। जब वस्तु पर प्रकाश पड़ता है, तो उसका कुछ हिस्सा टकराकर चारों तरफ फैल जाता है। यह प्रकाश जब हमारी आँखों पर पड़ता है तो हमें वस्तु दिखाई देती है। हर वस्तु अपने गुण के अनुसार प्रकाश का कुछ हिस्सा सोख लेती है, कोई वस्तु लाल रंग कम सोखती है तो कोई पीला। टकरा कर हमारी आँखों तक आए प्रकाश में किसी एक रंग के प्रकाश की मात्रा अधिक हो सकती है। इसी से हमें उस वस्तु के रंग का आभास होता है। सूर्य के प्रकाश में कई रंगों की किरणें होती हैं, जिन्हें सात मुख्य रंगों में शामिल कर सकते हैं। जब हमें कोई वस्तु लाल दिखती है तब इसका मतलब है कि उस वस्तु पर जो प्रकाश पड़ा उसमें से उसने लाल को छोड़कर बाकी रंग सोख लिए हैं और लाल रंग का प्रकाश ही हमारी आँखों तक आया है। इसीलिए हमें वह वस्तु लाल दिखती है। इसी तरह वस्तुएँ हरी,पीली,नीली या अन्य रंगों की दिखाई देती हैं। ऊपर दी गई जानकारी के आधार पर बताओ कि वस्तुओं का रंग बल्ब के प्रकाश में, सूर्य या ट्यूब लाइट के प्रकाश में थोड़ा बहुत अलग-अलग क्यों दिखता है ? पीली वस्तु को यदि हम लाल रंग के प्रकाश में देखें तो वह हमें काली दिखेगी। सोचो क्यों ?

दिनेश ध्रुव, बन्धवापुरा, बिलासपुर

० क्या वास्तव में भूत-प्रेत होते हैं ?

— भूत-प्रेत के बारे में बहुत कहानियाँ तुमने सुनी होंगी। एक से एक रोंगटे खड़े कर देने वाली। पर क्या तुमने कभी भूत को देखा है ? गिरते हुए पत्तों की आवाज़ और अपना साया भी डर होने पर भूत बन जाते हैं। मैंने तो कभी भूत नहीं देखा। हाँ, कुछ लोग जिन्होंने भूत देखा है, उनके भूत देखकर हँसा जरूर हूँ।

विनय डोलस, टिमरनी

० पत्थर, काँच, फर्श तथा सीमेंट पर फफूँद क्यों नहीं लगती ?

— फफूँद वास्तव में जीव हैं और एक प्रकार के पौधे हैं। अन्य जीवित प्राणियों व पौधों की तरह उन्हें भी भोजन की आवश्यकता होती है और उन्हें पनपने के लिए कुछ परिस्थितियों की जरूरत होती है। फफूँद भोजन मृत अवशेषों से प्राप्त करते हैं। इन अवशेषों के सड़ने से कूड़ा करकट लगातार इकट्ठा नहीं होता रहता और अवशेषों में मिले खनिज लवण पुनः जमीन में मिल जाते हैं। फफूँद का उपयोग ब्रेड बनाने, पनीर तैयार करने, कार्बनिक तेजाब बनाने, एन्टीबायोटिक्स आदि प्राप्त करने के लिए भी होता है। पेनीसीलीन भी एक प्रकार के फफूँद से ही प्राप्त होती है। कुकुरमुत्ता, खमीर आदि भी एक प्रकार के फफूँद ही हैं।

फफूँद स्वयं अपना भोजन नहीं बना सकते और मृतोपजीवी हैं। इनमें क्लोरोफिल (हरित पदार्थ) नहीं होता। इनकी रचना में सामान्य पौधों की तरह जड़, पत्ती और तना नहीं होता। फफूँद अनेक प्रकार की होती है। तुमने भी शायद अलग-अलग तरह की फफूँद देखी होगी। कितने प्रकार की फफूँद तुम देख या पहचान सकते हो ? जरूरत पड़े तो हैण्ड लैंस का इस्तेमाल करो। तुम्हें इनके

क्या-क्या भाग दिखते हैं ? क्या फफूंद में कुछ भाग उस पदार्थ में भी जाते दिखाई देते हैं जिस पर फफूंद लगी है ? इसके अलावा फफूंद में एक गोल-गोल हिस्सा होता है, जिसमें फफूंद पैदा करने वाले बीजाणु होते हैं। बीजाणु हवा में फैल जाते हैं और तैरते रहते हैं।

फफूंद पैदा करने वाले बीजाणु जब किसी ऐसी वस्तु के सम्पर्क में आते हैं जहां से इन्हें भोजन मिल सके तो यह उग जाते हैं। इन्हें पनपने के लिए मृत कार्बनिक पदार्थ व नमी की जरूरत होती है। इसीलिए धूप व ताजी हवा से दूर रखी खाने की वस्तु पर फफूंद लगने की बहुत अधिक संभावना होती है। फफूंद लगने के लिए वस्तु में कार्बनिक पदार्थ होना आवश्यक होता है जिससे कि वह भोजन का काम ले सकें। चमड़े के जूते या चप्पल, बासी रोटी, बासी सब्जी आदि सभी वस्तुओं पर फफूंद लग सकती है। जिस भी वस्तु पर फफूंद लगती है वह सड़ने-गलने लगती है। कई फफूंद हमारी फसलों पर लग जाती हैं और उसका नुकसान करती हैं। हमारी त्वचा पर भी फफूंद लग जाती है। दाद, एक प्रकार की फफूंद ही हैं। इस सबके आधार पर कहा जा सकता है कि फफूंद हमारे लिए लाभदायक भी है और नुकसानदेह भी। इसे पनपने के लिए नमी की आवश्यकता होती है (क्योंकि पाचन क्रिया में यह पानी का उपयोग करती है)। पत्थर, कांच, सीमेंट के फर्श आदि में कार्बनिक पदार्थ नहीं होते और इनका उपयोग कोई जीव भोजन के रूप में नहीं कर सकता। उपरोक्त जानकारी के आधार पर यह तो समझ में आ गया होगा कि पत्थर, कांच व फर्श आदि पर फफूंद क्यों नहीं लगती। क्या हम यह सोच सकते हैं कि जिन वस्तुओं पर फफूंद लगना सम्भव है, उन पर फफूंद लगने से रोकने का क्या तरीका है ? पत्थर व फर्श आदि के लगातार गीले रहने पर और बहुत तेज धूप न लगने पर उन पर काई क्यों लग जाती है ?

हमारे आस-पास सामान्यतः कितने प्रकार के फफूंद दिखते हैं और उनका आकार किस प्रकार का होता है ?

चन्द्रशेखर, मोहनदास, रामरतन, टिमरनी

० गाय, भैंस आदि बगोल (जुगाली) करते हैं, पर घोड़ा क्यों नहीं करता ? घोड़े के सिर पर सींग क्यों नहीं होते ?

— गाय, भैंस, बकरी, हिरण तथा अन्य बगोल करने वाले जानवर ऐसे हैं जो आमतौर पर अपनी रक्षा नहीं कर सकते। उन्हें हमेशा शक्तिशाली मांसाहारी जानवरों का भय बना रहता था। इसके अलावा वे अपने दुश्मन मांसाहारी जीवों की तुलना में तेज भी नहीं भाग सकते। इसका कारण है उनके शरीर का भारी होना व उनके शरीर व पाँव की बनावट। ऐसी स्थिति में उनके लिए मांसाहारी जीवों से बचकर जल्दी-जल्दी भोजन खा कर सुरक्षित स्थान पर जाकर छिपना आवश्यक था। वे ही (तेज न दौड़ पाने वाले) चौपाए बच पाए जो इस परिस्थिति में जीवित रह सकते थे। इस तरह के जानवरों में आमाशय का विकास इस तरह से हुआ कि वे जल्दी-जल्दी भोजन कर एक स्थान पर एकत्र कर लेते हैं। यह भोजन पाचन तंत्र में नहीं जाता। फिर सुरक्षित स्थान पर बैठकर वे भोजन को वापस मुंह में लाकर धीरे-धीरे चबाते हैं। इसी को बगोल या जुगाली करना कहते हैं। इसके विपरीत घोड़ा फुर्तीला होने के कारण खतरा उत्पन्न होने पर भागकर अपनी रक्षा कर सकता है। इसके साथ ही घोड़ा घास के मैदानों का जानवर है (जंगल में घोड़ा घास के मैदानों में ही रहता है)। इसलिए उसे अपने भोजन की तलाश में अपने निवास से अधिक दूर भी नहीं जाना पड़ता। इसलिए उसके आमाशय का विकास, गाय आदि की तरह नहीं हुआ।

घोड़े के सिर पर सींग न होने का कारण भी इसी से जुड़ा है। गाय, भैंस या अन्य जानवर जो तेज नहीं दौड़ सकते, मौका पड़ने पर अपने सींगों से अपनी रक्षा करने की कोशिश करते हैं। यानी वे आक्रमण करने वाले को सींगों से चोट पहुँचा सकते हैं। जबकि घोड़ा एक तो तेज दौड़कर अपनी जान बचा सकता है, दूसरे वह पिछले पैरों पर खड़े होकर अगले पैरों से भी हमला कर सकता है। इसीलिए घोड़े में सींगों का विकास नहीं हुआ। वैसे सींगों के होने पर घोड़े को भागते समय दिक्कत भी होती।

यह प्रक्रिया जन्तुओं के क्रमिक विकास से जुड़ी है जिसमें अंग की उपयोगिता व जीव के परिस्थितियों से जूझ पाने की सम्भावना के आधार पर ही उनका विकास व प्रकृति में बच पाना निर्भर है। इसी तरह ही कितने ही प्रकार के प्राणियों का परिस्थितियों से जूझ न पाने के कारण अस्तित्व खत्म हो गया है।

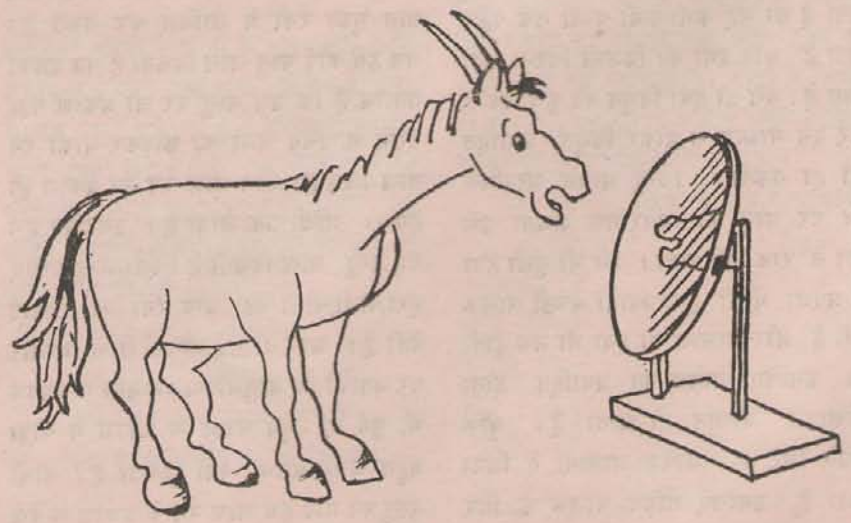

राजीव कुमार, सांगाखेड़ाकलाँ

० अमरबेल में पत्ती और जड़ क्यों नहीं होती है ?

— अमरबेल एक परजीवी पौधा है। यानी ऐसा पौधा जो अपना भोजन खुद नहीं बना सकता और भोजन के लिए वह दूसरे पौधों पर आश्रित रहता है। यह सही है कि अमरबेल में पत्तियाँ नहीं होती परन्तु उसमें जड़ें होती हैं चाहे वे धरती तक न पहुँचती हों। एक अमरबेल लगे पौधे की टहनी से अमरबेल को धीरे-धीरे अलग करो। क्या तुम्हें अमरबेल के नीचे से कुछ रेशे से निकलते दिखते हैं ?

अमरबेल भोजन व पानी उस पौधे से प्राप्त करती है जिस पर वह उगती है। उससे निकली जड़ें पौधे के तने में घुस जाती हैं और वहाँ से भोजन व पानी सोखती हैं। अमरबेल चूँकि अपना भोजन स्वयं नहीं बनाती इसलिए उसमें हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) भी नहीं होता। उसके लिए पत्तियों का भी कोई उपयोग नहीं है। हाँ, पत्तियों के लिए अतिरिक्त भोजन व पानी की व्यवस्था जरूर करनी पड़ती उसको। वास्तव में जीवों का विकास धीरे-धीरे होता है और उसमें जीवन के संघर्ष में जिन्दा बचने के लिए उपयोगी अंग विकसित हो जाते हैं। वे प्रजातियाँ जिनमें वे अंग विकसित नहीं हो पाते व जिनमें नुकसानदेह या अनुपयोगी अंग बने रहते हैं धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं। अमरबेल की आज की संरचना इस प्रक्रिया से ही गुजर कर बनी है और इसीलिए उसमें उसके जीवन-यापन के तरीके के अनुरूप जड़ें विकसित हुई हैं और उसमें पत्तियाँ नहीं हैं। **(प्रश्नकर्ता कृपया अपने नाम के साथ अपनी कक्षा एवं विद्यालय का नाम अवश्य लिखें– संपादक)**

लघुकथा

बिफना का स्कूल

पेड़ की छाया में थोड़ी देर सुस्ताने के बाद मास्टर शिवध्यानजी की जान में जान आई। चिलचिलाती धूप से आँखें बचाते हुए उन्होंने सामने देखा–आज भी बिफना अपने अबोध बेटे से तपती दोपहरी में मिट्टी ढुलवा रहा था। नंग-धड़ंग, कृशकाय बालक किसी प्रकार काँखते-कूँखते ढेलों को बाँध तक फेंक रहा था। "यह बाप नहीं, दुश्मन है, दुश्मन ! इस नौ-दस साल के बच्चे से इतनी कड़ी मेहनत करवाता है और लू-लक्कड़ से बचने के लिए एक बिस्टी तक नहीं देता। कस्साई कहीं का !" मास्टर साहब बड़बड़ाने लगे। उनसे उस मासूम की तकलीफ नहीं देखी जा रही थी। तभी बिफना भी वहाँ सुस्ताने चला आया।

"गोड़ लगी, मास्साहब !"

"बिफना ! तुम्हारे दिल में जरा भी दया नहीं है रे ! एकदम जानवर हो गए तुम सब।"

बिफना हक्का-बक्का रह गया। मास्टर साहब के बुजुर्ग और नेक दिल होने के कारण वह बड़ी इज्जत करता था उनकी।

"का हुआ, मास्साहब ?"–उसने सहमते हुए पूछा।

'उस एक बित्ते के छोकरे में थोड़ी-सी जान है, रे ? भर-भर दिन उससे गदहे की तरह काम लेते हो। अरे अभी उसकी उमर है, खेलने-खाने की, पढ़ने-लिखने की। कई बार कहा– मेरे स्कूल में भेज दिया करो। मुफ्त की पढ़ाई है। हरिजन हो, कापी किताब, खाना-पीना, सब मिल जाएगा। लेकिन, दो-ढाई रुपये की लालच में अपनी तरह उसे भी जानवर बनाए रखना चाहते हो।"

आरोप सुनकर तिलमिला उठा बिफना। मन हुआ–खरी-खोटी सुना डाले वह भी। लेकिन, ऐसा कर न सका। नम्र स्वर में बोला— "मास्साहब ! कोय बाप जानबूझ के अपन बेटे का जीवन कइसे बरबाद कर देगा ? कम से कम हम तो आइसा नहीं कर सकते।"

"मतलब ? पढ़ाई से किसी का जीवन बर्बाद होता है क्या ?"

"छमा करना मास्साहब, हम तो मूरख हैं। पर आँखों देखी मच्छी नहीं निगली जाती। अब यही देखो ना–गंगू भैया की का दसा हो गई–बेटे के पीछे। रमकिसुनवाँ के पढ़ाने में का-का दुख नहीं झेला दोनों जनों ने। भूखे रहे; नंगे रहे, मगर बेटे को बीए-एम्में करवा के ही छोड़े। और अब देख रहे हैं–रमकिसुनवाँ कउनों काम का न रहा। दौड़-दौड़ कर नौकरी खोजने जाता है, और फिर घर आकर मटर-गस्ती करता फिरता है। बूढ़ा-बूढ़ी तो उसका खर्च ढोते-ढोते टूट गये अब तो। कहाँ बेटे के काँधे पर बुढ़ापे का बोझ लाद कर निश्चित होना चाहते थे, कहाँ बेटा ही सिर पर सवार हो गया। हम तो पढ़ा रहे हैं अपन बेटा को जिन्दगी की असली पढ़ाई। हाथ गोड़ मजबूत रहेगा, मेहनतकश रहेगा, तो कीं भी खा-कमा लेगा। बोझ तो नहीं बनेगा किसी का। आपके ईसकुल से हमारे ईसकुल की पढ़ाई लाख दर्जा भली है, मास्साहब !"

पता नहीं बिफना की अंतिम बात मास्टर साहब ने सुनी या नहीं। वे छड़ी टेकते हुए आगे बढ़े जा रहे थे।

–कृष्णबल्लभ राय "मनु"
(लघु आघात से साभार)

शिक्षक का कर्त्तव्य

स्कूल का एक प्रमुख कार्यभार है छात्रों को सृजनात्मक विचारों वाले व्यक्ति बनाना, जिनमें जिज्ञासा और खोज की ललक हो। बचपन की कल्पना, मैं चिंतन शिक्षा के काल के रूप में करता हूँ और शिक्षक को ऐसा व्यक्ति मानता हूँ, जो बड़ी सावधानी और जतन से अपने शिष्यों के चरित्र तथा आत्मिक जगत का निर्माण करता है। बच्चे के मस्तिष्क को विकसित और सुदृढ़ करने की चिंता, यह चिंता कि संसार को प्रतिबिंबित करने वाला यह दर्पण सदा संवेदनशील और ग्रहणशील बना रहे–यह शिक्षक का एक सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। जिस प्रकार माँस पेशियाँ शारीरिक अभ्यास से, कठिनाइयों को लाँघते हुए विकसित और मजबूत होती हैं उसी प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिए भी श्रम करने की, उस पर जोर डालने की आवश्यकता होती है।

एक और नया कदम : पचमढ़ी कार्यगोष्ठि

होशगावाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबंधित संगम केन्द्रों पर कार्यरत सहायक शिक्षकों की बैठक में राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् भोपाल के संचालक श्री एस. सी. बेहार की पहल पर उपस्थित विज्ञान सहायक शिक्षकों ने म. प्र. की प्राथमिक शालाओं में पढ़ायी जाने वाली कक्षा 3, 4 एवं 5 की विज्ञान विषय की पाठ्य पुस्तकों–"आओ करके सीखें"को पर्यावरण आधारित प्रयोगनिष्ठ विधि से पढ़ाये जाने लायक व्यावहारिक कार्यपुस्तक के रूप में बदलने का बीड़ा उठाया।

संगम केन्द्र पर पदस्थ इन विज्ञान सहायक शिक्षकों को उपरोक्त कार्य हेतु स्त्रोत शिक्षक के रूप में लिया गया। बैठक में शिक्षकों के इस उत्साह से प्रभावित श्री बेहार ने उनको यह खुली छूट दी, कि वे प्रशासकीय तंत्र के शिकंजे से हटकर स्वयं के अनुभव एवं सम्पर्क के आधार पर प्राथमिक शालाओं में कार्यरत प्रत्येक विकास खण्ड से 3-3 ऐसे शिक्षकों का चयन करें जो नवाचार में रुचि रखते हों तथा स्वेच्छा से कार्य करने हेतु तत्पर हों। अध्यापकों ने अपनी सूझबूझ से एक सप्ताह की अल्पावधि में इस कार्य को पूरा करके चुने हुए शिक्षकों की सूची संभागीय शिक्षा अधीक्षक के कार्यालय में विज्ञान इकाई होशंगाबाद को सौंप दी। इसके बाद बी.टी.आई. पचमढ़ी में दि. 11-10-84 से 20-10-84 तक विज्ञान विषय, कक्षा 3, 4 एवं 5 की पाठ्य पुस्तकों के पाठ्यक्रम पुनरीक्षण की एक कार्यगोष्ठी का आयोजन शासन की ओर से किया गया। इसमें जिले की प्राथमिक शालाओं के 26 चुने हुए अनुभवी विज्ञान शिक्षक थे जो ग्रामीण पर्यावरण से परिचित हैं। इसके अलावा संगम केन्द्रों पर कार्यरत 9 सहायक विज्ञान शिक्षकों ने स्रोत शिक्षकों के रूप में (जो पर्यावरण आधारित प्रयोगनिष्ठ विधि से विज्ञान पढ़ाने में अनुभवी हैं) भाग लिया। इसके अलावा स्थानीय संस्था के प्राचार्य, शिक्षक प्रशिक्षकों, विज्ञान इकाई के सदस्य तथा "एकलव्य" संस्था के प्रतिनिधियों ने समय-समय पर उपस्थित रहकर अपना योगदान दिया। इस कार्यगोष्ठी के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित थे:–

1. कक्षा 3, 4 एवं 5 की विज्ञान विषय की पुस्तकों में ऊपर लिखा है "विज्ञान-आओ करके सीखें" मगर इसमें प्रयोग नहीं कराये जाते अर्थात् इसका केवल नाम भर "विज्ञान-आओ करके सीखें" है अतः इसकी सामग्री (पाठ्यवस्तु) सरल प्रयोगों में बदलें।
2. पुस्तक में दी गई अवधारणाओं पर सरल प्रयोग इस प्रकार तैयार करें, जिनमें प्रायोगिक सामग्री सस्ती हो एवं सहज स्वाभाविक रूप से पर्यावरण में ही हमें प्राप्त हो जाये।
3. कक्षा 3, 4 एवं 5 के स्तर को ध्यान में रखते हुये सरल भाषा का प्रयोग किया जाये। (उदाहरण के लिये होशंगाबाद विज्ञान की पुस्तकों की भाषा कक्षा 3, 4 एवं 5 से भी ज्यादा सरल लगती है।)
4. अनावश्यक पाठय सामग्री जो 3, 4 एवं 5 के स्तर के अनुकूल न हो छोड़ दी जाये। इसमें हमें अपनी समझ एवं विवेक से कार्य लेना है। उदाहरण–मिट्टी, पत्थर और चट्टानें (खनिज) अध्याय की पाठ्य सामग्री कक्षा 6 से भी ज्यादा जटिल एवं विस्तृत दी गई है।
5. कुछ नये प्रयोग और उन्हें करने के लिए उपकरण यदि आसानी से बनाये जा सकें जिनके जरिये बालकों के ज्ञान में वृद्धि हो तो अवश्य बनायें।
6. पाठ्यवस्तु में कोई महत्त्वपूर्ण एवं व्यावहारिक ज्ञान की बात विकसित हो तो अवश्य उसे पाठ्यक्रम में शामिल किया जावे।
7. बनाये गये अध्यायों पर बहुत सोच-विचार कर कलम चलायी जाये, पाठ चाहे कम बनें मगर हों सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण, जो बालकों की समझ के अनुकूल हों।
8. पाठों पर सामूहिक रूप से स्रोत दल एवं शिक्षक दल विचार करें। जब तक प्रस्तावना या प्रयोग सरल रूप से सामने न आयें उस पर गहनता से विचार किया जावे। जहाँ प्रयोग संभव न हों वहाँ परिभ्रमण के द्वारा या स्थान विशेष पर अवलोकन के द्वारा उसकी पूर्ति की जावे।
9. शिक्षक कथन के द्वारा भी समय-समय पर कुछ बातें कही जा सकती हैं। उसकी भाषा पर विचार किया जाये, कम शब्दों में अपना आशय स्पष्ट हो जाये, इस बात का ध्यान रखा जाये।
10. कुछ अध्याय यहाँ पर सामूहिक रूप से तैयार किये जायें, जो कार्यगोष्ठी की अवधि में पूर्ण हो जायें एवं बचे हुये अध्याय शिक्षक दल व्यक्तिगत रूप से तय की गई अवधि में तैयार कर देंगे।

स्रोत दल एवं शिक्षक दल के 35 सदस्यों को तीन समूहों ए, बी और सी में बाँट-कर क्रमशः कक्षा 5, 4 और 3 के अध्यायों का विभाजन एवं वितरण किया गया। इसके पश्चात् स्थानीय संस्था के प्रशिक्षकों एवं स्रोत दल के शिक्षकों के मिले-जुले प्रयासों के फलस्वरूप कक्षा 3 का वनस्पति जगत का पाठ प्रायोगिक तरीके से आदर्श पाठ के रूप में तैयार कर सामूहिक रूप से चर्चा के लिये एवं मार्गदर्शन के लिये प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्तुतीकरण से स्रोत दल एवं शिक्षक दल ने कार्यगोष्ठी के प्रमुख बिन्दु आत्मसात कर

सुबह 8.00 बजे से अपने कार्य में जुटकर रात्रि के 2 या 3 बजे तक निर्दिष्ट कार्य पूर्ण करके ही सोने का निश्चय किया। कार्यक्रम के प्रारंभ में बड़ी ही विचित्र स्थिति का सामना स्रोत दल एवं शिक्षक दल ने किया। जब तक पाठ निर्माण नहीं हुआ, शिक्षक एवं स्रोत शिक्षक भी सोच रहे थे कि यह कैसी कार्यगोष्ठी है? इसमें कितना किसका योगदान है? कौन इसे संचालित कर रहा है? संचालन भी स्वयं अपना है? कार्य भी स्वयं हमें करना है? बहस भी हमें ही करनी है? समस्याएँ भी हमें उठानी हैं, हल भी हमें ही खोजना है। धीरे-धीरे शिक्षक अपने लक्ष्य को पाने में सफल होते गये। कार्यगोष्ठी की लगन और कार्यशैली ने सभी को प्रभावित किया।

विभिन्न वर्गों द्वारा पाठ पूरा होने पर उसे सदन में प्रस्तुत किया जाता था। उस पर सभी मुद्दों पर चर्चा, आलोचना होती, सुझाव आते, बहस होती, नई-नई समस्याएँ खड़ी की जातीं, सुलझाई जाती, विस्तृत रपट लिखी जाती। तदोपरांत एक जाँच कमेटी उन अध्यायों के पूर्ण होने पर उनकी जाँच करती, अपने नोट्स लिखती, दूसरी कमेटी उसे पुनः संशोधित करवाकर, उसे फाइल करती। इसी तरह कार्य प्रातः 8.00 बजे से प्रारंभ होता। स्त्रोत दल की मीटिंग से प्रारंभ होकर सामूहिक पाठ-लेखन तक रात्रि के 2.00 बज जाते। जब तक पाठ पूरा नहीं होता शिक्षकों को नींद नहीं आती। पाठ पूरा करके ही शिक्षक सोते थे। इस प्रकार का अभिनव प्रयोग पहली बार हुआ, जिसमें शिक्षक को खुली छूट मिली। वैचारिक स्वतंत्रता एवं प्रशासनिक दबाव से परे वह उन्मुक्त वातावरण में शिक्षक के महत्व को इंगित कर रहा था। शिक्षक मिलकर पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं, नवाचार में विकास की ओर नया कदम उठा सकते हैं। यदि उन पर विश्वास करें एवं उनके कार्यों को महत्व दिया जाय तो शिक्षक ऐसे कार्यों में हमेशा अग्रणी रहेगा। यह कार्यगोष्ठी शिक्षकों के परिश्रम का मूल्यांकन है। शिक्षकों की लगन और परिश्रम इस कार्यगोष्ठी की अभूतपूर्व उपलब्धि है। कुछ ऐसे शिक्षक थे जो पचमढ़ी का आनंद लूटने आये थे। मगर इस कार्यक्रम से जुड़कर उन्हें एहसास हो चुका है कि निरन्तर परिश्रम से उद्देश्य तक पहुँचना कितना सुखकर कार्य है। सभी के मिलेजुले प्रयास के द्वारा आधे से ज्यादा पाठ तैयार हो चुके हैं। इसके अलावा भी शिक्षकों से व्यक्तिगत पाठ की अपेक्षा की गई थी, वह भी पूरी हुई। स्रोत दल और शिक्षक दल के लिये यह सुखद अनुभव रहा।

–अवध बिहारी खरे एवं तुलसीराम हर्णे

तैयारी–कार्यगोष्ठी से पहले की.....

पचमढ़ी में आयोजित प्राथमिक कक्षाओं की विज्ञान पुस्तकों के पुनरीक्षण गोष्ठी में हरदा क्षेत्र के रिजगाँव, कुलहरदा, नकवाड़ा और हरदा के शिक्षक चुने गये थे। प्रायः सभी शिक्षकों को इस तरह की कार्यगोष्ठी में जाने का पहला अवसर था। एकलव्य संस्था के हरदा सेंटर ने इन सभी शिक्षकों की एक बैठक आयोजित की, जिसमें कार्यगोष्ठी में किए जाने वाले काम के संबंध में विस्तार से चर्चा हुई।

चर्चा के दौरान पाठ्यक्रम और बदलाव की जरूरत, पर्यावरण आधारित प्रयोगनिष्ठ पद्धति, शिक्षकों के विज्ञान पढ़ाने के अपने अनुभवों पर चर्चा हुई। चर्चा के दौरान कुछ प्रमुख प्रश्नों पर विचार किया गया।

क्या प्राथमिक शालाओं में विज्ञान संबंधी प्रयोग करवाये जाते हैं? प्रयोग करने के लिए कभी किट का उपयोग किया है? प्राथमिक शालाओं में प्रयोग क्यों नहीं हो पाते–शिक्षकों की कमी, इमारत की कमी, प्रशासनिक अव्यवस्था। विचारों और भाषा का स्तर प्रायमरी के बच्चों की समझ के अनुकूल है या नहीं? प्रयोग करने हेतु जो निर्देश दिए गये हैं, क्या वे पर्याप्त हैं, उनसे प्रयोग कराने में कितनी मदद मिलती है? विषय वस्तु बच्चों के लिए बहुत अधिक है या ठीक है? क्या आपने होशंगाबाद विज्ञान की कक्षा छठवीं का कोई सरल प्रयोग करके देखा है?

उपरोक्त प्रश्नों पर विचार करके उनसे कक्षा छठवीं के प्रयोग की सामग्री संगम केन्द्र से मँगवाकर होशंगाबाद विज्ञान के कुछ सरल प्रयोग करवाये गये। उनमें शिक्षकों ने स्वयं निम्न प्रयोग किये:–

उन्हें फ्यूज बल्ब दे दिये गये, उन्होंने होशंगाबाद विज्ञान की कक्षा छठवीं पुस्तक पढ़कर स्वयं यह प्रयोग किया। फ्यूज बल्ब को प्रयोगानुसार साफ करके उसमें पानी भरकर लैंस बनाया एवं लैंस का प्रयोग करके बहुत प्रसन्न हुए।

किट सामग्री में उपलब्ध सूक्ष्मदर्शी को स्वयं एड्जस्ट किया, उसका प्रयोग करना सीखा, सूक्ष्मदर्शी में मक्खी को पकड़कर उसकी टाँगों का अवलोकन किया। अवलोकन में जो जानकारी मिली उससे वे आश्चर्य चकित रह गये। और विज्ञान को और निकट से जानने की जिज्ञासा बढ़ी। उन्होंने चींटी और एक बाल का अवलोकन किया। होशंगाबाद विज्ञान की पुस्तक उन्हें बड़ी सरल एवं सहज लगी। जो अनुभव एवं समझ उनमें इस चर्चा से विकसित हुई उससे उन्हें इस कार्यक्रम में जुड़ने पर प्रसन्नता हुई। और इस तरह तैयारी करके वे पचमढ़ी की कार्य गोष्ठीमें गए।

–तुलसीराम हर्णे

यह तो केवल सातवीं पास है

स्रोतदल के द्वारा हरदा संगम केन्द्र से एक प्राथ. शाला के विज्ञान शिक्षक श्री मांगीलाल परते प्रा. शा. रिजगाँव को इस कार्यगोष्ठी हेतु चुना गया जिनके विषय में एक अधिकारी का कहना था, ये शिक्षक केवल सातवीं पास हैं।

ये क्या विज्ञान के पाठ्यक्रम का पुनरीक्षण करेंगे ? ऐसे लोगों से क्या होगा ? यह उनका व्यंग उस शिक्षक पर था। पर इस कार्यगोष्ठी की उपलब्धि यही शिक्षक बने। जब विज्ञान इकाई होशंगाबाद ने कार्यगोष्ठी के उद्देश्यों से स्रोतदल एवं शिक्षकदल को परिचित करवाया तब यह शिक्षक बहुत हतोत्साहित हुये। उसने सोचा यदि मुझसे अध्याय या पाठ नहीं निर्मित हुये तो मेरी सी.आर. खराब हो जायगी। वह रात्रि में स्रोत शिक्षक के पास उदास बैठे रहे। उन्होंने कहा कि सब मुझसे शिक्षा में आगे हैं। मैं कम शिक्षा वाला हूँ। मुझमें वैज्ञानिक समझ नहीं आयेगी। मगर बार-बार प्रस्तावना बनाते हुए, सरल प्रयोगनिष्ठ पाठयक्रम लिखते हुये, प्रश्नों को पूछकर, सुझाव को मानकर लिखते लिखते उन्हें इस कार्यगोष्ठि का उद्देश्य समझ में आया; फिर वह नये-नये पाठ लिखने में, समस्याएँ उठाने में, सुझाव देने में, प्रस्तावना लिखने में दक्ष हो गये। उनकी समझ विकसित हुई और आत्मविश्वास बढ़ गया। जब एक-लव्य संस्था के श्री स्याग ने उनसे पूछा कि आपको वानगैरिक का निर्वात वाला प्रयोग पर्यावरण में ही मिली सामग्री से करना हो तो कैसे करोगे। तब परतेजी ने तत्काल सुझाया कि एक गिलास हम मुँह में लगाकर उसकी हवा अंदर खींचकर उसमें निर्वात उत्पन्न करके चिपका रहने देंगे। फिर उसे हम खींचेंगे तो उसका मुँह से निकलना ही मुश्किल हो जायेगा। तब श्री स्याग उन बातों से चकित रह गये। इस प्रकार परतेजी इस कार्यगोष्ठी में सक्रिय भूमिका निभाते रहे। यह भी इस कार्यगोष्ठी की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

विश्लेषणात्मक ढंग से कैसे पढ़ाएं

बच्चे जब पढ़ना प्रारम्भ करते हैं तब जो कुछ लिखा होता है उसे ज्यों का त्यों मान लेते हैं। ऐसा करना पढ़ाई के शुरूआत के दिनों में तो ठीक है। परंतु यही आदत यदि बाद तक बनी रहती है तो ठीक नहीं है। जो कुछ उसने पढ़ा है उसके संबंध में यदि कोई प्रश्न उसके मन में नहीं उठते, उसे वह तर्क की कसौटी पर नहीं कसता, लिखे हुए शब्दों के आगे पीछे नहीं सोचता, पढ़े हुए ज्ञान को अपने पूर्वज्ञान एवं अन्य संदर्भों से नहीं जोड़ पाता और विश्लेषण नहीं कर पाता तो जो कुछ वह पढ़ता है अधिक सार्थक नहीं होता। अध्ययन को अधिक सार्थक बनाने के लिए जरूरी है कि आलोचनात्मक दृष्टि (विवेचन या विश्लेषण की क्षमता) विकसित हो। इससे विचारों एवं मूल्यों की पहचान होती है। बच्चे में आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने के लिए कुछ प्रयास किए जा सकते हैं।

1. बच्चे ने जो कुछ पढ़ा है उसके संबंध में समय-समय पर प्रश्न पूछना।
2. लेखक ने जो कुछ लिखा है वह उसे स्पष्ट है या नहीं ? क्या वह अपने विषय का विद्वान है ? लेखक ने किसी मुद्दे को लेकर पूर्वाग्रह तो नहीं पाल रखे हैं ?
3. तथ्यों और विचारों में बच्चा अन्तर कर सके, इसमें मदद करना चाहिए। "मैं ऐसा सोचता हूँ", "ऐसा कहा गया है", "यह हो सकता है"....ऐसे वाक्य विचारों को दर्शाते हैं। उसे यह भी बताना चाहिए कि कुछ लेखक अपने विचारों को ही तथ्य मानकर प्रस्तुत करते हैं।
4. जो कुछ उसने पढ़ा है उसके संबंध में वह स्वयं से पूछे कि क्या यह संभव है ? असंभव है ? हो सकता है ? नहीं हो सकता है ? यह आदत बन सके, यह कोशिश करना चाहिए।
5. शब्दों में अन्तर्निहित अर्थों को वह ढूंढ़ सके यह प्रयास करना चाहिए।
6. बच्चे से यह पूछना चाहिए कि लेखक ने पढ़ी जाने वाली सामग्री किस उद्देश्य से लिखी है ?
7. लेखक के लिखने का ढंग (शैली), शब्दों का चुनाव और वाक्यों के प्रकारों का विश्लेषण बच्चे से करवाना चाहिए।
8. प्रामाणिक जानकारी के खिलाफ उसने क्या पढ़ा है वह भी परख सके यह कोशिश हो।

("पेरेन्ट्स एंड चिल्ड्रन" में प्रकाशित जेम्स जे. ओडोनेल, रेमण्ड जे. टेलर तथा पॉल जे. मेकइलेनी के लेख से साभार)

आपने सुझाया है

'बाल वैज्ञानिक' कक्षा छठवीं के अध्याय 4 (चुम्बक) का प्रयोग क्रमांक 5 चुम्बक का प्रभाव क्षेत्र बतलाने हेतु किया जाता है। वर्तमान विधि में पुष्ठे के ऊपर लोहे का बुरादा छिड़क कर पुष्ठे को चुम्बक पर रख कर, ऊँगली से हल्के-हल्के ठोक कर चुम्बक के प्रभावक्षेत्र की आकृति बनायी जाती है।

प्रयोग के दौरान यह देखा गया है कि उपरोक्त विधि में लोहे का बुरादा ज्यादा व्यर्थ जाता है, ऊँगली से ठोके जाने पर कई बार वह जमीन पर बिखर जाता है और आकृति भी अधिकांशतः स्पष्ट नहीं बनती।

परन्तु यदि चुम्बक पर पुष्ठे को रखकर हाथ में लोहे का बुरादा लेकर चुटकी भर कर थोड़ा-थोड़ा चारों ओर बिखेरा जाए तो आकृति कम समय में और अधिक स्पष्ट बनेगी और लोहे का बुरादा भी ज्यादा व्यर्थ नहीं होगा। लोहे का बुरादा जितना अधिक बारीक होता है, यह प्रयोग उतनी हीअच्छी तरह होता है।

राजेन्द्र गुप्ता, सहा. शिक्षक
शा.मा.वि. दतोना
नरवर शाला संकुल, जिला उज्जैन

सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई.... नागरिकों का कर्त्तव्य-पालन और शासकों की लड़ाई

शिक्षा पर गर्माती हुई बहस ने सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई को अपने दायरे में खींच लिया है। इसी सन्दर्भ में लेखिका ने कुछ सवाल उठाए हैं। आप इन सवालों के बारे में क्या सोचते हैं? इस सन्दर्भ में ऐसे बहुत से और भी प्रश्न आपके दिमाग में भी उठे होंगे। शायद आपने स्वयं इन प्रश्नों का हल निकालने की कोशिश की हो। हम भी जानना चाहेंगे उसके बारे में। इस चर्चा को आगे बढ़ाने और विकल्प ढूंढ़ने में आपकी प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण होगी। यह प्रतिक्रिया, टिप्पणी, आलोचना या लेख के रूप में आमंत्रित हैं।

जब भी कोई विषय के पढ़ने-पढ़ाने के बारे में हम सोचते हैं तो बात उद्देश्यों से शुरू होती है। वर्तमान में मध्यप्रदेश की माध्यमिक शालाओं में पढ़ाए जा रहे सामाजिक अध्ययन के उद्देश्य 6ठी, 7वीं, और 8वीं की सामाजिक अध्ययन पुस्तकों की प्रस्तावनाओं में दिए गए हैं। ज़रा इन पर एक नजर डालें:–

"इस अध्ययन से हमारे छात्र दैनिक तथा स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों तथा भूमिकाओं को समझ सकेंगे, अपने इतिहास से परिचित होंगे तथा प्रकृति के विशाल प्रांगण में अपने स्वप्न की खोज कर सकेंगे। मनुष्य के सामाजिक होने की अनिवार्यता को साकार करने की दृष्टि से इस प्रकार का अध्ययन सहायक होगा।"

"छात्रों को सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण का और उनकी परस्परता का ज्ञान कराकर उनमें कुशलता एवं सूझबूझ उत्पन्न करना, इस सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य है। विश्वास है कि छात्र अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करते हुए स्वस्थ राजनीति की प्रक्रिया समझेंगे और ऐसा वातावरण बनाने में सक्रिय सहयोग देंगे। ये छात्र प्रकृति का मानव के हित में उपयोग भी समझ सकेंगे।"

"सामाजिक अध्ययन की इस पुस्तक में ऐसा प्रयास किया गया है कि राष्ट्र की आने वाली पीढ़ी योग्य नागरिक बनकर अपने वर्तमान प्रजातंत्रात्मक समाज में उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह कर सके। इसी पुस्तक में नागरिक को देश की सीमा को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व की प्रेरणा भी दी गई है। अंतर्राष्ट्रीयता की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की मंजिल तक पहुँचाना ही इस विषय का अभिप्रेत है।"

कुल मिलाकर इनका तात्पर्य एक अच्छे नागरिक बनाने से है। फिर क्या कारण है कि अखबारों और पत्रिकाओं में, चाय की दुकान पर और बस या ट्रेन में बढ़ती हुई आर्थिक और सामाजिक समस्याओं की चर्चा होती रहती है? और मज़ेदार बात यह है कि बात जब इन समस्याओं के कारणों की होती है तो संकेत युवा पीढ़ी की गिरती हुई नैतिकता की ओर होता है। और इनका समाधान? लगता है जैसे कोई फरिश्ता ही आकर हालत सुधार सकता है। इस तरह बात करने वालों में अकसर वे लोग भी शामिल हैं जो अपने आपको समाज वैज्ञानिक कहेंगे। पर हालत बिगड़ती ही जाती है। हम बाध्य हो जाते हैं यह प्रश्न पूछने को कि इतने वर्षों से सामाजिक अध्ययन के विषय पढ़े हुए लोग इन समस्याओं के हल की ओर क्यों नहीं ले जा पा रहे? क्यों 8वीं या 11वीं तक भी पढ़ा नागरिक इन समस्याओं का हल ढूंढ़ने की कोशिश नहीं कर रहा?

इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने के लिए सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई का विश्लेषण करना जरूरी है। उपरोक्त उद्देश्य तो एक नजर में पढ़ने सुनने में बहुत अच्छे लगते हैं पर ये इतने सारे शब्द कुछ कहते हुए भी बहुत कम कहते हैं–स्पष्ट बिल्कुल नहीं है। क्या हैं छात्र के 'दैनिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व व भूमिकाएँ?' क्या इनमें कभी विरोधाभास नहीं होता? अगर विरोधाभास होता है तो कहाँ, कब और क्यों? किस तरह के 'स्वप्न खोजने' की अपेक्षा है हमें अपने छात्रों से? किस सामाजिक अनिवार्यता को साकार बनाएँगे ये छात्र? क्या 'कुशलताएँ' और कैसी 'सूझबूझ' उत्पन्न करना चाहते हैं हम इन बच्चों में? क्या संबंध है 'सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण' में? क्या है वह चीज़ जिसे हम 'स्वस्थ राजनीति की प्रक्रिया' कहते हैं? 'योग्य नागरिक' की क्या परिभाषा है आज के समाज में? 'प्रजातंत्रात्मक समाज में नागरिक के उत्तरदायित्व' क्या होते हैं?

जब तक उद्देश्यों में इन प्रश्नों पर स्पष्टता नहीं होगी तो यह कह पाना बहुत मुश्किल है कि क्या आज की सामाजिक स्थिति में इन्हीं उद्देश्यों की ज़रूरत है और ऐसे ही नागरिकों की या फिर और किन्हीं की। यह आंक पाना भी कठिन है कि हमारे पाठ्यक्रम की विषयवस्तु इन उद्देश्यों की पूर्ति कर रही है या नहीं, कर भी रही है तो किस हद तक।

इन्हीं उद्देश्यों को यदि थोड़ी गहराई से देखें तो लगता है मुख्य रूप से बात मूल्यों, कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों की ज्यादा हो रही है, आज की सामाजिक स्थिति को समझ पाने के प्रयास की कम। केवल एक ही जगह किसी प्रकार के समझ की ओर संकेत है:–'विश्वास है कि छात्र स्वस्थ राजनीति की प्रक्रिया को समझेंगे और ऐसा वातावरण बनाने में सक्रिय सहयोग देंगे।

ये छात्र प्रकृति का मानव के हित में उपयोग भी समझ सकेंगे।'

अब ज़रा पाठ्यक्रम की विषयवस्तु की ओर देखें, किस तरह इसमें इन धुंधले उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयास किया गया है:–

इतिहास : कक्षा 6ठी–'सिन्धु घाटी की सभ्यता का **वर्णन**, वैदिक काल के जीवन की एक झलक, जैन एवं बौद्ध धर्म का **वर्णन**, मौर्य राजाओं द्वारा किए गए जनहित के कार्य, गुप्तकाल के समय का जन-जीवन और दक्षिण भारत के राजाओं का **वर्णन** किया गया है।'

कक्षा 7वीं–'राजपूत एवं मुगल राजाओं की शासन व्यवस्था और तत्कालीनजन जीवन, भारत में महमूद गजनवी एवं मोहम्मद गोरी के आक्रमण एवं प्रभाव, गुलाम, खिलजी, एवं तुगलक वंश, सल्तनत काल की शासन व्यवस्था एवं मराठा राज्य का **वर्णन** है।

कक्षा 8 वीं–'मुगल साम्राज्य का विघटन–भारत में अंग्रेजी राज्य का उदय, अंग्रेजी राज्य की स्थापना एवं उनके प्रशासन संबंधी **जानकारी दी गई है**।'

नागरिक शास्त्र : कक्षा 6ठी:–'मनुष्य के समाज के प्रति कर्त्तव्य, समाज व्यवस्था, स्थानीय शासन, जिलों का प्रशासन एवं आर्थिक जीवन का **महत्व समझाया गया है**।

कक्षा 7वीं–नागरिकों के अधिकार एवं कर्त्तव्य, मध्यप्रदेश के शासन प्रबन्ध के अन्तर्गत राज्यपाल, मुख्यमंत्री, विधानसभा तथा राज्य सचिवालय की **जानकारी दी गई है**।

कक्षा 8वीं–भारतीय एकता को सुदृढ़ बनाने वाली बातें, भारत की संसदीय प्रणाली, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, सर्वोच्च न्यायालय, संघीय लोक सेवा आयोग और संयुक्त राष्ट्र संघ की **जानकारी दी गई है**।

भूगोल:–कक्षा छठवीं–में सौर परिवार के सदस्यों का वर्णन, पृथ्वी का आकार, उसकी दैनिक और वार्षिक गतियाँ तथा उनके परिणाम का **वर्णन** है।····· विश्व के सबसे बड़े महाद्वीप एशिया तथा एशिया के प्रमुख····देशों का **वर्णन** है।

कक्षा 7वीं पृथ्वी की आंतरिक हलचल··· उनका मानव जीवन पर प्रभाव का **वर्णन** है, अफ्रीका का भौगोलिक **वर्णन दिया गया है**। यूरोप एवं उसके 4 बड़े देशों का **वर्णन** है।

कक्षा 8वीं वायुमण्डल की रचना·····का विशद वर्णन है। ····उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका की भौगोलिक **जानकारी दी गई है**।···· आदि।*

इस विषयवस्तु को देखकर तो लगता है कि हमारे पाठ्यक्रम का एकमात्र उद्देश्य यह है कि बच्चों को विविध तरह के वर्णन दिये जाएँ और जानकारी के ढेर सारे पुलन्दों का बोझा डाला जाए। ऐसा बोझ कि बच्चों और उनके पालकों की मानसिक शारीरिक कूबड़ निकल आए। आप कहेंगे कि विकास के साथ-साथ बढ़ती हुई जानकारी तो बच्चों को देनी ही है नहीं तो वे पिछड़ जाएँगे। पर इतनी और ऐसी जानकारी जो बच्चों के समझ के बाहर हो, उसे तो रटने के सिवाए और क्या कर सकते हैं? और इस रटने का हौवा उन्हें अपने आस-पास की चीजें भी समझने में बाधा बन जाता है। ऐसी जानकारी से तो नुकसान अधिक और फायदे कम दिखते हैं। यदि केवल जानकारी देना और परीक्षा में किसी भी तरह सफल बनाना उद्देश्य नहीं तो सीधा प्रश्न यह उठता है कि वे सामाजिक मूल्य जो पाठ्यक्रम के उद्देश्यों में दिये गये हैं, क्या महज़ वर्णन करने या जानकारी देने से ही उत्पन्न हो जाएँगे? समाज में कानून व्यवस्था और कर्त्तव्य का केवल महत्त्व ही समझाने से, जो कि वास्तविकता से बिल्कुल परे हो, क्या एक 'स्वस्थ राजनीति की समझ जिसकी हमें अपेक्षा है, उत्पन्न हो जाएगी? एक उदाहरण से बात स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। बच्चे 'स्थानीय शासन' नामक पाठ में पंचायत और नगरपालिका के सदस्यों व उनके कार्यों के बारे में पढ़ते हैं। परन्तु वे कहीं यह नहीं पूछ पाते कि उनकी पंचायत या नगर पालिका वास्तव में ये कार्य कर रही है या नहीं? या क्या वे अपनी आय का ठीक-ठीक उपयोग कर रही हैं? पुस्तक में इस ओर संकेत भी नहीं है और यदि बच्चे पूछें भी तो चुप करा दिये जाते हैं। न तो पुस्तकों में ही बताया गया है कि यदि ये संस्थाएँ ठीक से काम न करें तो नागरिक इसका क्या उपाय कर सकता है। पाठ्यक्रम में कहीं इसका प्रावधान नहीं है कि उसे वास्तविक स्थिति से जोड़ा जाए–ऐसे प्रश्न ही नहीं उभरते। हाल ही में हरदा की नगरपालिका को भंग करने का प्रयास किया गया––स्थिति अभी भी अनिर्णीत है। परन्तु हरदा के छठवीं कक्षा के छात्र जो 'स्थानीय शासन' पढ़ चुके थे, यह नहीं बता पाए कि ऐसी स्थिति क्यों आई? मतभेद किन दो संस्थाओं के बीच है और निर्णय कौन करेगा? नगरपालिका को बनाने और भंग करने के क्या संवैधानिक तरीके हैं या बनाए जाते हैं–इसका तो पाठ्यपुस्तकों में कहीं ज़िक्र ही नहीं है। शायद आपकी प्रतिक्रिया हो कि कौन नहीं जानता कि आज अधिकांश पंचायत और नगर पालिकाएँ अपना कार्य नहीं कर रहीं, स्थानीय राजनीति अच्छी नहीं है –इस सबसे इतने छोटे बच्चों का क्या वास्ता? फिर ये अपेक्षा क्यों कि 'छात्र स्वस्थ राजनीति की प्रक्रिया को समझेंगे और ऐसा वातावरण बनाने में सहयोग देंगे।' यदि राजनीतिक गंदगी का आभास ही न दिलाएँ, हम अपने छात्रों को, और उनके कारणों का विश्लेषण न करें तो 'स्वस्थ राजनीति कैसे उत्पन्न करेंगे कल के नागरिक? यदि वे अपने प्रतिनिधियों से उनके कर्त्तव्यों के बारे में पूछ भी नहीं सकते तो किन अधिकारों और कर्त्तव्यों की बात कर रहे हैं हम अपने उद्देश्यों में?

आप कहेंगे "ठीक है, नागरिकशास्त्र में ये गड़बड़ी है पर भूगोल और इतिहास में क्या दिक्कत?" 'सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण की परस्परता' की बात की हमने अपने उद्देश्यों में। क्या इस परस्परता का आभास दिलाने के लिए पहले हमने इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र को अलग-अलग किया और फिर प्राकृतिक और सामाजिक भूगोल को? क्या इस तरह खण्डित पाठ्यक्रम से हमारा

* (ये शब्द कक्षा 6, 7 व 8 की 'सामाजिक अध्ययन' पुस्तकों की प्रस्तावना में से लिये गये हैं, रेखांकन लेखिका की ओर से)

यह उद्देश्य पूरा हो पाएगा ? 'फिर प्रकृति का मानव के हित में उपयोग" की बात है। लेकिन आज मानव बिल्कुल निरंकुशता से प्रकृति का शोषण कर रहा है–पेड़ अंधाधुंध कट रहे हैं, मरुस्थल फैल रहे हैं, नदी-नालों, समुद्र तक का पानी प्रदूषित हुआ चला जा रहा है। इन समस्याओं की खूब बातचीत होती है, पर्यावरण दिवस मनाए जाते हैं। पर पाठ्य पुस्तकों में इनका कोई ज़िक्र नहीं, कोई विश्लेषण नहीं।

रही बात इतिहास की। इतिहास का गहरा संबंध आज की परिस्थितियों से है–यह तो कहा जाता है। जिस तरह हम इतिहास को देखेंगे उसी तरह आज की स्थिति को भी। इतिहास को देखने का हमारा नज़रिया यह है कि जब भी समस्याएँ आईं तो राजाओं या शासकों या नेताओं ने (अशोक, विक्रमादित्य, अकबर, तिलक, गाँधी) इनका समाधान किया, जो नहीं कर पाए वे अच्छे राजा या नेता नहीं थे। हमारी पुस्तकें ऐसी लिखी गई हैं मानो जो कुछ भी इतिहास में घटा वह राजाओं और शासकों की नीतियों या राजनैतिक व सामाजिक नेताओं की स्पर्धा से घटा। यही नज़रिया आगे चलकर हमारी नागरिकता की पुस्तकों में झलकता है–आज के समाज में ये समस्याएँ हैं, सरकार (मानो वह कोई फरिश्ते का जीता जागता स्वरूप है) इन समस्याओं का **समाधान कर रही है**। इसका मतलब यह नहीं कि सरकार या शासकों की नीतियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं। पर ये नीतियाँ हवा में नहीं बन जातीं। इनका गहरा संबंध उस समय की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था से होता है। इन संबंधों को समझने का कोई प्रयास हमारी शालेय पुस्तकों में नहीं होता और समस्याएँ वहीं की वहीं रहती हैं। उनकी चर्चा होती है, शाला के बाहर। यह स्वीकारते हैं लोग कि हमारी सरकार वह फरिश्ता नहीं जो ये समस्याएँ हल करे लेकिन किसी दूसरे फरिश्ते के इंतजार में चाय पीते रहते हैं।

अंत में मुख्य प्रश्न यह उठते हैं–

(1) क्या हमारी शालेय सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई ऐसे नागरिक बनाने में कोई भूमिका अदा कर सकती है, जो हमारे समाज के समक्ष समस्याओं के निराकरण की सही दिशा खोजने में मददगार हो ?

(2) यदि हाँ, तो ऐसे सामाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम के क्या उद्देश्य होने चाहिये और क्या प्रणाली ? किन मूल्यों और कुशलताओं को विकसित करने का प्रयास हो और कैसे ?

(3) क्या हमारा वर्तमान पाठ्यक्रम यह भूमिका अदा कर रहा है ? यदि हाँ तो किस हद तक, यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

(4) क्या आज की सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई को वास्तविकता से जोड़ने की कोई जरूरत है ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? यदि हाँ तो कैसे ?

शायद हम लोग मिलकर इन प्रश्नों का हल ढूँढ़ने में और सार्थक प्रयास कर सकते हैं। या फिर फरिश्ते के इंतजार में ही बैठे रहें ?

—अंजली, हरदा

(पृष्ठ 12 का शेष)

तब हम सफलता तथा असफलता के कारणों का पता लगा सकते हैं। इसी प्रकार के जांचने के तरीके से ही हम विज्ञान के सही रूप को समझ पाए और यह अगर तरीका इतना अच्छा है तो हो सकता है, विज्ञान को समझने का सार यही है। इस निष्कर्ष को हमने जाँचने की कोशिश की। कोशिश अभी-भी जारी है। क्या लोग अपने अनुभवों को समझने की जरूरत को स्वीकार करेंगे ? क्या लोग अपने किए गए काम तथा उसके उद्देश्य के बारे में सोचेंगे ? शायद इस प्रश्न का जवाब प्रश्न में ही निहित है, क्योंकि वे यदि ऐसा न करेंगे तो हम अपने आप से सवाल करेंगे क्यों ?

ग्यारह वर्ष का समय, इस प्रकार के साधारण नतीजे पर जिसके बारे में फिर भी पूरी तसल्ली न हो, पर पहुँचने के लिए काफी ज्यादा है। अगर आज से दस साल पहले ये प्रश्न हमने अपने आप से किए होते तो शायद हम इसी नतीजे पर ग्यारह दिन में पहुँच गए होते। यह लेख इसीलिए लिखा गया है कि और हम से बुद्धिमान लोगों को यह समझने के लिए कि **विज्ञान एक 'समझने का तरीका' है। वैज्ञानिक हमेशा प्रश्न करेगा। "क्यों ?" जब तक कि उसका संतुष्टपूर्ण जवाब नहीं पा लेगा।** अगर आपकी राय हमारी राय से मिलती है तो आपसे पूछेंगे "क्यों" ? अगर आपकी समझ में नहीं आएगा कि हम क्या कह रहे हैं तो आप हम से पूछेंगे "क्यों ?" और अगर आपकी राय हमारी राय से अलग है तो हम आप से प्रश्न करेंगे "क्यों ?"

और ईंधन की तरह जल रही जनता....

अतीत पर गर्व करने के अभ्यस्त
हम अपने-अपने में त्रस्त।
कभी घी दूध बहाती थीं
हमारी नदियाँ ?
अब बहाती हैं–
गरीबों की झोपड़ियाँ, झुग्गियाँ ?
और बहाती हैं–
लाशें।
नाव रेल या बस के उलटने पर ?
मरने वालों की संख्या
तय करती है राजनीति ?
बहाव की गति और दिशा
कब कैसी होगी ? कौन जाने ?
यही तो है नदी की राजनीति
कभी कभार
बहता दिखाई देता है सामान
उन मृतकों का
जो लूटने की क्रिया से
बच गया है ?
यही तो है
हमारी
नदी घाटी की सभ्यता
सिन्धु घाटी की सभ्यता
एक सामानान्तर सभ्यता
जो पनप गई है
रेल की पटरी के किनारों पर
महानगरों की
अवैध सन्तान के रूप में
रेल किनारे की सभ्यता ?
इसी सभ्यता की आग में
भट्टी की तरह
गरमा रहा है मेरा देश ?
और ईंधन की तरह
जल रही जनता ?

—श्याम साकल्ले
हरदा

विज्ञान का प्रारम्भ

विज्ञान का जन्म एवं आरम्भ प्रागैतिहासिक काल में संभवतया अंधविश्वास एवं धर्म के कारण हुआ होगा। इसके बारे में आदिकाल से विचारकों द्वारा प्रतिपादित परिकल्पनाओं की कुछ झलकियाँ इस लेख में प्रस्तुत की जा रही हैं!

एक जमाना था, जब सारा ही संसार मनुष्य के लिए एक रहस्य था। हर चीज़ चकरानेवाली और विचित्र थी।

उसके द्वारा उठाया हर क़दम, उसकी बांह की हर हरकत अज्ञात शक्तियों को चालित कर देती थी, जो उसे बना या बिगाड़ सकती थीं।

मानव-जाति को इतना कम अनुभव था कि लोगों को यह भी विश्वास नहीं था कि रात के बाद दिन होगा या नहीं या सर्दियों के बाद बसंत आयेगा या नहीं।

प्रागैतिहासिक लोग सूर्य के आकाश में उदित होने में सहायता करने के लिए टोने किया करते थे। मिस्र में फरून (बादशाह), जिसे सूर्य का अवतार माना जाता था, यह सुनिश्चित करने के लिए नित्य मंदिर की परिक्रमा करता कि सूर्य अपना दैनिक चक्र पूरा कर लेगा।

शरद में मिस्री लोग "सूर्य के डंडे" का त्यौहार मनाया करते थे। उनका ख़याल था कि शरद में सूर्य इतना कमज़ोर हो जाता है कि अपनी यात्रा जारी रखने में सहायता देने के लिए उसे डंडे की ज़रूरत पड़ती है।

लेकिन मनुष्य ने काम किया और वह संसार और वस्तुओं के विभिन्न गुणों के बारे में अधिकाधिक जानता गया।

चकमक को परिष्कृत और तेज़ करने वाले प्रागैतिहासिक कारीगर ने इसके गुणों के बारे में स्वयं जानकारी हासिल की। वह जानता था कि पत्थर सख्त होता है और अगर उस पर दूसरे पत्थर से चोट की जाए, तो वह टूट जाएगा, मगर चोट से वह रोने नहीं लगेगा। ठीक है कि पत्थर भी भांति-भांति के होते हैं। यह पत्थर तोड़े जाते समय नहीं रोया था, लेकिन कोई दूसरा पत्थर रोने लगे, तो? ऐसी बातों पर हमें हँसी आती है। लेकिन प्रागैतिहासिक मानव के लिए वे ज़रा भी हँसने की बातें नहीं थीं।

वह यह नहीं जानता था कि सामान्य नियमों को कैसे निकाला जाए और यही कारण था कि उसके लिए जीवन अपवादों से ओत-प्रोत था। उसने देखा कि कोई दो पत्थर एक जैसे नहीं होते। और इसीलिए वह यह भी समझता था कि उनमें गुण भी अलग-अलग ही होंगे। जब वह चकमक की नई कुदाल बनाता, तो वह उसे बिलकुल पहली कुदाल जैसा ही बनाने की कोशिश करता, ताकि वह भी ज़मीन को उतनी ही अच्छी तरह से तोड़े।

सैकड़ों और हज़ारों साल गुजर गए। मनुष्य के हाथों से जो भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर निकले थे, उनसे उसे पत्थरों के बारे में एक सामान्य समझ होने लगी। चूंकि सभी पत्थर सख्त थे, इसलिए वह निश्चितता के साथ कह सकता था कि पत्थर सख्त होता है। चूंकि कोई पत्थर कभी नहीं बोला था, इसलिए वह कह सकता था कि पत्थर नहीं बोलते। इस तरह विज्ञान के पहले कणों, वस्तुओं की संकल्पना, का जन्म हुआ।

जब कारीगर कहता था कि चकमक एक सख्त पत्थर है, तो उसका आशय जिस टुकड़े पर वह उस समय काम कर रहा होता था, उसी से नहीं, चकमक के किसी भी टुकड़े से होता था।

अतः उसे प्रकृति के किसी क़ानून की, पृथ्वी पर प्रचलित किसी नियम की जानकारी प्राप्त हो चुकी थी।

चित्र—एक फरून सूर्य को बलि चढ़ा रहा है।

"बसंत सर्दियों के बाद आता है।" इसमें सचमुच आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह बिलकुल प्रत्यक्ष है कि सर्दियों के बाद शरद नहीं बसंत ही आता है। लेकिन ऋतु-परिवर्तन हमारे पूर्वजों द्वारा लंबे पर्यवेक्षण के बाद की गई सब से पहली वैज्ञानिक खोजों में एक है। लोगों ने वर्षों की गणना करना इस बात को समझने के बाद ही सीखा कि सर्दी और गरमी अकस्मात ही नहीं आ जाती है, बल्कि बसंत सदा सर्दियों के बाद आता है और फिर बसंत के बाद गरमी और शरद का आगमन होता है।

मिस्रियों ने यह खोज नील नदी की बाढ़ों को देख-देखकर की। वे एक बाढ़ से अगली बाढ़ तक के समय को पूरा एक वर्ष मानते थे।

पुरोहित लोग नदी पर निगरानी रखते थे, क्योंकि लोगों का ख़याल था कि नदी भी कोई देवता है। आज दिन तक मिस्री मंदिरों की दीवारों पर, जो नील तक पहुँचती थीं, छोटी-छोटी लकीरें बनी हुई हैं, जिनकी सहायता से पुरोहित लोग पानी के स्तर को नापा करते थे।

(शेष पृष्ठ 38 पर)

बच्चे असफल क्यों होते हैं ?

अधिकतर बच्चे स्कूल में असफल होते हैं । बहुतों पर यह असफलता बहुत गहरा असर करती है ।

लगभग चालीस प्रतिशत बच्चे जो हाईस्कूल में दाखिल होते हैं, अपनी पढ़ाई पूरी करने के पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं । कालेज में अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़ देते हैं एक तिहाई और बहुत से बच्चे कागज पर सफल होने के बावजूद भी असलियत में असफल होते हैं । वे अपनी स्कूली शिक्षा केवल इसलिए पूरी कर पाते हैं, क्योंकि हमने तय कर लिया है कि उन्हें पास कराना है । भले ही उन्हें कुछ आता हो या न आता हो । ऐसे बच्चों की संख्या उससे कहीं अधिक होती है, जो हम सोचते हैं । यदि हम अपने मूल्यांकन का स्तर थोड़ा और सुधार लें, जैसा कि हम में से बहुत से चाहते भी हैं । तब हमें जल्दी ही पता चल जाएगा कि हम कितने पानी में हैं । हमारी कक्षाएँ ऐसे बच्चों से ठसा-ठस भरी हुई हैं, जो सही मायने में परीक्षा पास नहीं कर सकते हैं ।

इसके अलावा एक और खास अर्थ में बहुत से बच्चे असफल रह जाते हैं । सीखने-समझने और सृजन करने की अपनी उस जबरदस्त जन्मजात क्षमता के बहुत थोड़े से हिस्से को विकसित करने में जिसका पूरा-पूरा उपयोग वे अपनी जिंदगी के शुरू के दो-तीन सालों में करते थे । कुछ बच्चों को छोड़कर (जो अच्छे विद्यार्थी हो न हों) बाकी सब असफल हो जाते हैं । बच्चे असफल होते हैं, क्योंकि वे डरे हुए, भ्रमित और बुझे-बुझे रहते हैं । उनका डर सब से ज्यादा होता है, उन बड़ों के निराश और नाराज होने से, जिनकी आसमान छूती उम्मीदें, उनके सिर पर तलवार की तरह लटकती रहती हैं ।

वे बुझे-बुझे से इसलिए रहते हैं, कि स्कूल में उनसे जो कहा और करवाया जाता है वह इतना महत्त्वहीन और मन्द होता है कि, उसमें उनकी व्यापक बुद्धि क्षमता और प्रतिभा के बहुत ही सीमित और संकीर्ण उपयोग की गुंजाइश होती है ।

वे भ्रमित होते हैं, क्योंकि स्कूल में उन पर जिन शब्दों की बौछार होती रहती है, उन्हें वे समझ ही नहीं पाते । उन शब्दों का, उन्हें बताई गई और बातों से अक्सर विरोधाभास रहता है । और उनकी अपनी जानकारी से इनका कोई संबंध नहीं रहता---न ही, वास्तविकता के उस चित्र से जो उनके मन में बना रहता है ।

इतनी व्यापक असफलता आखिर होती कैसे है ? दरअसल कक्षाओं में ऐसा क्या घटता रहता है ? क्या कर रहे होते हैं, ये असफल होने वाले बच्चे ? क्या गुणा-भाग चलता रहता है, उनके दिलो-दिमाग में ? वे अपनी क्षमताओं का भरपूर उपयोग क्यों नहीं कर पाते ? हम सब के लिए यह एक चुनौती है ।

घिग्गी बँध जाती है

एक दिन मैंने निर्णय किया कि बच्चों से पूछूं कि उन्हें उस समय कैसा लगता है जब कक्षा में जो कराया जा रहा हो वह उनकी समझ में न आए । हम लोग इधर-उधर की गप कर रहे थे जिसमें सब ही बच्चे बिना झिझक भाग ले रहे थे । मैंने कहा, "भई मैं एक बात जानने के लिए उत्सुक हूँ पता नहीं तुम लोग बताओगे या नहीं ।" बच्चों ने पूछ "क्या ?" मैं बोला "तुम्हें क्या लगता है, तुम्हारे दिमाग में क्या गुजरता है जब तुम से शिक्षक कोई प्रश्न पूछे और तुम्हें उसका उत्तर न पता हो ?"

लगा जैसे कोई धमाका हो गया हो । कमरे में एक बेचैन सी चुप्पी छा गई, बच्चों के चेहरों पर तनाव झलकने लगा । काफी देर तक कोई आवाज नहीं आई । आखिर में संजीव ने, जो औरों से साहसी है, तनाव को तोड़ते हुए ऊँची आवाज में कहा "घिग्गी बँध जाती है !"

उसने सब के मन की बात कह दी थी । सभी जोर-जोर से एक ही बात बोलने लगे कि जब शिक्षक ऐसा प्रश्न पूछता है जिसका उत्तर वे नहीं जानते तो उनका मारे डर के बुरा हाल हो जाता है । यह सुनकर मैं बड़े अचरज में पड़ गया । यह तो एक ऐसी शाला थी जिसे लोग प्रगतिशील समझते थे, जहाँ यह प्रयत्न होता था कि बच्चों पर अधिक दबाव न पड़े, जहाँ यह कोशिश रहती थी कि बच्चे एक दूसरे से अधिक नम्बर पाने की दौड़ में ही न उलझे रहें ।

उनसे पूछा, मैंने कि उन्हें क्यों इतना डर लगता है । वे बोले कि सब के सामने असफल होने से वे डरते हैं, फैल हो जाने से डरते हैं । इससे डरते हैं कि उन्हें बेवकूफ कहा जाएगा, और इससे कि अपने आप को वह बेवकूफ मानने लगेंगे । बेवकूफ ! यह शब्द क्यों इतना बुरा है उनके लिए ? कहाँ से सीखते हैं वे एक दूसरे को बेवकूफ कहना ?

लगता है कि अच्छे से अच्छे स्कूल में बच्चे डरते हैं बहुत से तो अधिकतर समय डरे रहते हैं । ऐसा लगता है कि यह जीवन की एक कठोर सच्चाई है । क्या इसके लिए कुछ किया नहीं जा सकता ?

हार जीत और सीखने की प्रक्रिया

कहा जाता है कि नए कौशल सीखने और आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए बच्चों को "सफ़ल होने" के अनुभव की आवश्यकता होती है। पर क्या इस कथन से हम सब का मतलब एक ही होता है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि सफ़लता बहुत जल्दी और आसानी से और लगातार नहीं मिलती रहनी चाहिए। सफ़लता का अर्थ है किसी ऐसी समस्या को हल करना जिसमें शायद यह सम्भावना भी हो कि हम सफ़ल न हो पाएँ। सफ़लता का अर्थ है "मैं नहीं कर सकता" को बदल कर "मैं कर सकता हूँ और मैंने कर दिया" में बदलना। इसलिए किसी काम में हमेशा सफ़ल होने का मतलब है कि उस काम को करने पर कुछ उपलब्धि नहीं महसूस होगी।

जीवन की शुरुआत में ही हमें सीख लेना चाहिए कि सफ़लता हमेशा प्राप्त नहीं होती। ज़िंदगी में हम सब के लिए जीतों से अधिक संख्या में हारें होती हैं। क्या हमें प्रारंभ से ही इस बात को नहीं समझ लेना चाहिए ? साथ ही हमें यह भी समझना चाहिए कि जितना कर पाने से हम अपने आप को सक्षम मानते हैं उससे ऊँचा निशाना लगाएँ, उससे अधिक कर पाने की कोशिश करें। जो हम आज करने में असफल रहेंगे, हम या कोई और कल कर दिखाएगा। हमारी सफ़लता ही शायद किसी और की असफ़लता का आधार बन सके।

ज़ाहिर है हमें बच्चे को 'निरन्तर असफ़लता' की खुराक से बचाना चाहिए। ज्यादा आवश्यक यह है कि असफ़लता को एक शर्मनाक घटना के बजाए सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जा सके। असफ़ल बालक अपमानित न महसूस करे और उसकी असफ़लता को रचनात्मक रूप से उसे सिखाने में उपयोग में लाया जा सके। शायद यहाँ असफलता और हार के बीच फ़र्क करने की आवश्यकता है। इस बात से शायद ऐसा लगे कि असफ़ल बालकों को बतायें कि वे अधिकतर सफ़ल हो रहे हैं। मगर हम किसी बच्चे से वह कैसे छिपा सकते हैं जो उसी की उम्र के दूसरे बच्चे कर रहे हैं। दरअसल इन बच्चों को सफ़लतापूर्वक और अच्छे ढंग से कुछ कर पाने के अनुभव की ज़रूरत है—इतने सफ़लतापूर्वक और अच्छे ढंग से कि उन्हें यह बताने की आवश्यकता ही न रहे कि उन्होंने काम अच्छा किया है। चाहे इसके लिए कोई उन्हें वह एकाग्रता और दृढ़ इच्छा शक्ति, जिसकी उनमें कमी है, बाहर से उपलब्ध करायें।

(जान हॉल्ट की पुस्तक 'हाऊ चिल्ड्रन फेल' पर आधारित)

पृष्ठ 36 का शेष....

जुलाई के महीने में, जब खेतों की ज़मीन गरमी से कड़कने लगती थी, किसान लोग उस समय की बेचैनी के साथ प्रतीक्षा करने लगते थे, जब नील नदी का पीला, गादभरा पानी सिंचाई नालियों में होकर बहने लगता था। लेकिन शायद इस साल वह आयेगा ही नहीं ? अगर देवता लोगों से नाराज़ हो गए हों और वे उनके खेतों में पानी न भेजें, तो ?

सभी तरफ़ से मंदिरों में भेंटें और चढ़ावे लाए जाते। किसान अपने अनाज के आख़िरी मुट्ठे लेकर पुजारियों के पास आते और उनसे अनुनय करते कि देवताओं की ज़रा ज़ोर से स्तुति करें।

हर दिन उषा काल में पुजारी यह देखने के लिए नदी पर जाते कि पानी ने चढ़ना शुरू किया या नहीं।

हर शाम को वे मंदिर की चौरस छत पर चढ़कर तारों को निहारते। तारों भरा आकाश उनका पंचांग था।

और फिर एक दिन पुरोहित लोग मंदिरों में गंभीरतापूर्वक घोषणा करते : "देवताओं ने तुम पर कृपा की है—आज से तीन रात बाद तुम्हारे खेतों में पानी आ जाएगा।"

धीरे-धीरे, क़दम-ब-क़दम, लोगों ने उस विचित्र दुनिया को जानना शुरू किया, जिसमें वे रहते थे—परियों की कहानियों और जादू-टोने की दुनिया नहीं, बल्कि ज्ञान की दुनिया को। मंदिरों की छतें पहली ज्योतिष वेधशालाएँ थीं। कुम्हारों और ठठेरों के ठीहे पहली प्रयोगशालाएँ थीं, जिनमें पहले प्रयोग किए गए थे।

लोग प्रेक्षण करना, गणना करना और निष्कर्ष निकालना सीख रहे थे।

इस प्राचीन विज्ञान की आधुनिक विज्ञान से बहुत कम सामान्यता थी। यह अभी भी उस जादू-टोने से बहुत मिलता था, जिसका यह एक अंग भी था। लोग तारों का केवल प्रेक्षण ही नहीं करते थे, वे उनसे भाग्यफल भी बताते थे। आकाश और धरती का अध्ययन करते समय वे आकाश और धरती के देवताओं की भी आराधना करते थे। फिर भी, अज्ञान का घना कुहरा उठने लगा था।

("मनुष्य महाबली कैसे बना" से साभार)

अध्यापक की मन्शा कितनी कारगर

समाज में शिक्षक की भूमिका बहुत बढ़ा-चढ़ा कर पेश की जाती रही है। यहाँ प्रस्तुत है श्री मालीराम शर्मा का लेख, जिसमें उन्होंने अध्यापक की भूमिका को बगैर किसी लाग-लपेट के लिखा है। क्या इस बात की जरूरत नहीं है कि हम दूसरों के द्वारा और एक हद तक स्वयं भी हमारे द्वारा फैलाए जाने वाले भ्रमों को दूर रखकर वास्तविकता को पहिचाने ?

अनादि काल से एक मान्यता चली आ रही है कि अध्यापक आदरणीय है, वह गाय की तरह पवित्र है और इस तरह से कहा जा सकता है कि पवित्र गाय और अध्यापक एक ही साँचे में संजोये गये।

पवित्रता के साथ एक दिक्कत जुड़ी रहती है। एक बार किसी चीज पर पवित्रता का पोंछा या पलस्तर लगा दिया गया तो फिर पलस्तर पर पलस्तर लगातार चढ़ता ही जाता है, सिन्दूर लगाने की एक प्रक्रिया शुरू हो जाती है जो कि चलती ही रहती है। अगर किसी ने इस परत को कुरेद कर उसके मूल रूप को देखने का दुस्साहस किया तो बहुत बड़ा कुफ्र समझा जाता है। कुफ्र करने वाला काफ़िर और काफ़िर को किसी युग में बर्दाश्त नहीं किया गया।

बड़े कुफ्र की तो बात छोड़िये, छोटा-मोटा कुफ्र भी गवारा नहीं। मसलन कोई बात का थोड़ा लहजा बदल कर भी यह कहे, कबूल किया कि गाय पवित्र होती है, पर हर गाय पवित्र नहीं होती है, तो कई लोगों की भौंहें तन जायेंगी और फ़तवा होगा कि पवित्रता पर प्रहार करने वाले को जाति बहिष्कृत किया जाये।

सम्भवतः यही कारण रहे होंगे कि सार्वजनिक मंच पर अध्यापक के यशोगान करते वक्त में एक होड़-सी लग जाती है। अध्यापक को जमीन से घसीट कर ब्रह्मा और विष्णु के समकक्ष बैठाया जाता है और वह भी उस युग में जबकि उसे किसी दफ्तर में खड़े होने की जगह और इजाज़त भी मुश्किल से मिलती है। शास्त्रों और शायर लोगों की उक्तियाँ समर्थन में दलील के रूप में पेश की जाती हैं। गुरु और गोविन्द में कोई वाद-विवाद खड़ा न हो जाये, कबीर की शहादत पेश करके मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाता है।

यह तो हुआ कथानक का एक रूप। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। श्रद्धा का मुलम्मा हटा कर जरा तर्क की कसौटी लगा कर देखें तो सही कि हकीकत क्या कहती है। क्या अध्यापक समग्र परिवर्तन का माध्यम हो सकता है या वह स्वयं परिस्थितियों की देन है ? क्या वह परिस्थितियाँ पैदा करता है या परिस्थितियाँ स्वयं पैदा होती हैं ? या इस इतिहास का ऐसा कोई दौर रहा है जहाँ उसकी मंशा के मुताबिक इतिहास का चक्का घूमा हो ? सच कहने से कतराना नहीं चाहिए और सच्ची बात यह है कि अध्यापक परिवर्तन का माध्यम नहीं हो सकता। एक आदर्श अध्यापक यथा-स्थिति का पोषक हो सकता है।

आदर्श अध्यापक वही हो सकता है जो परिवर्तन का हामी नहीं होता। उसका पूर्ण योग और सहयोग तो चालू व्यवस्था की साज-सज्जा को सँवार कर बनाये रखना है। वह व्यवस्था के गंदे मुखौटे को अपने ज्ञान व अनुभव के कॉस्मेटिक्स के जरिये कुछ नूतनता व आकर्षण देने की कोशिश करता है। तर्कहीन रूढ़िगत परपम्राओं व धारणाओं को सामाजिक व जातीय धरोहर के रूप में पेश करता है। दूर क्यों जाइए ? **किसी शाला उत्सव में शरीक न सही दूर से देखिये। आरती, कलश द्वार, स्वागत गान में सामन्तवाद की गन्ध आती है, यदि आपकी नाक सलामत है और सूंघने की शक्ति मरी नहीं हो। सामन्त मर गया पर सामन्तवाद जिन्दा है।** छोटे-छोटे बच्चे अपने अध्यापक के नेतृत्व में मुख्य अतिथि को रिझाने के लिये सामन्ती शैली में उछल-कूद करते हैं तो वायुमण्डल में व्याप्त सामन्ती राख तेजी से उड़ने लगती है। बच्चे-बच्चियों से बचपन छीनकर उनसे प्रौढ़ की तरह आचरण करवाना कुफ्र से भी बढ़कर एक जुल्म है जो शालाओं में अध्यापक की राय से होता है और हम खुशी से सहते हैं।

अध्यापक से अपेक्षा की जाती है कि वह व्यवस्था से दी गई आचरण-संहिता का अक्षरशः अन्धानुकरण करे।

अध्यापक को संस्कारित ही तब माना जा सकता है जब वह प्रदत्त नियमों के अनुपालन में कोई कसर न छोड़े। नियम कैसे भी हों यह सोचने की जरूरत नहीं। नियम विवेक सम्मत हो, आवश्यक नहीं।

कक्षा में दिया हुआ पाठ्यक्रम, विभाजित समय-विभाग चक्र, विभागीय कलेण्डर आदि को मद्देनजर रखते हुए वह पढ़ा देगा, कितना पढ़ने लायक तथा कितना भुलाने लायक, उसके सोचने समझने की बात नहीं है।

कक्षा में वह व्याकरण के नियमों की बात करता है। कक्षा के बाहर भाषा की व्यवहार पद्धति में बदलाव आ गया हो, तो कोई खास बात नहीं, कोई नया शब्द या मुहावरा आम चलन में आ गया हो तो उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वह तो ध्यान तब ही देगा जब कोई नया व्याकरण साधिकार बात कहे। नेस्फील्ड या कामतप्रसाद गुरु जैसा व्यक्ति चाहिए।

अध्यापक मोटे तौर पर स्वभावतः दकियानूस रहा है। वह नियामक तो कम और प्रतिष्ठानों में प्रतिष्ठित लोगों की आज्ञानुसार ही आचरण करता रहा है। उसका मूलमंत्र यही रहा कि बात वही हो जो ठकुर सुहाती हो। वह भी

जानता है कि होगा वही जो "ठाकुर चाहेगा।" अध्यापक की यह स्थिति, जैसी भी है, कोई आज की चीज नहीं है। महान् गुरुओं के जमाने में भी यही स्थिति आज से कोई भिन्न नहीं रही होगी।

उस दौर की बात तो छोड़ दीजिये जब अध्यापक फक्कड़नुमा अन्दाज में अपने आश्रम चलाता होगा और उस पर कोई आर्थिक अंकुश न रहा होगा। रामायण व महाभारत काल को ही ले लें। लेकिन **जब से अध्यापक सेवा-चाकरी में आया, उसकी बुलन्दी खतम, पर कलम।**

महान गुरुओं के प्रति अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण रखते हुए, हम एक छोटा-सा लेखा-जोखा लें। परम् आदरणीय गुरु वशिष्ठ ने राम के राजतिलक का मुहूर्त निकाला, महाराजा दशरथ के कहनेपर (मुहूर्त हो गया फेल)। रंग में भंग। राजनैतिक घटना चक्र जिस गति से घूमा, उससे यह तो स्पष्ट होने लगा कि एक राजनैतिक अस्थिरता के साथ-साथ रघुवंश पर काली छाया पड़ेगी। गुरु वशिष्ठ को तो कम से कम स्पष्ट होगा ही। फिर गुरु ने चुप्पी क्यों साधी? उन्होंने अपने प्रभाव को काम में क्यों नहीं लिया? कैकेयी को समझाते, दशरथ को समस्या का हल ढूंढने में मदद करते। कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। **कारण एक ही हो सकता है कि गुरु का गुरुत्व इसी में था कि राजनैतिक मंशा के सामने गुरु की मंशा को नतमस्तक होने में ही शान और अस्तित्व की रक्षा संभव है।** वशिष्ठ यह बात भलीभाँति समझते थे।

गुरु द्रोण की स्थिति भी बहुत कुछ इसी तरह की है। गुरु द्रोण जब सरकारी सेवा में आ गये तो सरकारी गुरु की तरह ही आचरण किया।

एकलव्य एक भील का लड़का, परन्तु धनुर्विद्या में उसका कोई सानी नहीं। उसके सामने अर्जुन भी फीका। सीधी प्रतियोगिता में उसे पीटने वाला नजर नहीं आया तो कौरव पाण्डव तिलमिलाये और उन्होंने गुरु की ओर देखा जिसका अनकहा मतलब यही रहा होगा कि इस बे-आबरू से बचाओ। गुरु भी धर्म संकट में। इस स्थिति से उबरने के लिए एक भील बालक की श्रद्धा का जानबूझ कर दुरुपयोग किया गया। द्रोण का एकलव्य से दाहिने हाथ का अंगूठा गुरु दक्षिणा में माँगना किसी भी सूरत में समझ में नहीं आने वाली बात है। एकलव्य को अंगहीन बनाने में क्या तुक थी? न गुरु का एकलव्य या उसके परिवार के साथ कोई पुराना हिसाब था और न इसमें कोई गुस्सा या गौरव था। आजकल कई जगह अपनी ट्यूशन वाले लड़के को आगे लाने के लिए योग्य छात्र को कम अंक दे देते हैं, परन्तु महान् गुरु का यह कार्य इससे भी घटिया था।

गुरुद्रोण के सारे कार्यकलाप राजनीति से ज्यादा प्रभावित थे। अर्जुन को छोड़कर कौरवों को समर्थन देना, द्रोपदी को निर्वसना करने के कुकृत्य में चुप्पी साध लेना आदि अनेक मुँह-बोलते उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गुरु की मंशा के अनुसार घटना-चक्र में मोड़ लाना संभव नहीं था और महान् गुरु भी ठकुर-सुहाती के कायल थे। हम द्रोण को दोषी या लांछित करने का प्रयास नहीं कर रहे हैं परन्तु इससे एक बात उजागर हो जाती है कि अध्यापक नियामक या परिवर्तन का माध्यम नहीं हो सकता। अध्यापक की इच्छा-शक्ति नाम की कोई चीज नहीं। पर एक प्रश्न खड़ा रह जाता है।

अध्यापक को ऊँचा उछालने के पीछे मकसद क्या है? अध्यापक ब्रह्मा है, विष्णु है, इस प्रकार के प्रहसन पेश करने की जरूरत क्या है?

इसका उत्तर शायद गोल्जवदी की प्रिय थीम में है। उसका कहना है कि शिकारी और शिकार दोनों ही भयग्रस्त होते हैं। शिकारी और शेर का मुकाबला होता है तो डर लगता है कि शिकारी मारेगा। डर कर शेर हमला करता है। डर कर शिकारी बंदूक का घोड़ा दबाता है। मूल में डर दोनों तरफ काम करता है।

शायद यही डर प्रतिष्ठित लोगों तथा अध्यापक के बीच काम करता है। व्यवस्था को डर है कि अध्यापक बागी न हो जावें और सारा मामला बंटाधार न हो जावे।

फिर भी डर बना रहता है। भय के कई रूप होते हैं। भयभीत व्यक्ति और भयभीत व्यवस्था दोनों ही डरने की कोशिश करते हैं। अध्यापकों के अंधाधुंध स्थानांतरण के पीछे भय काम करता है।

व्यवस्था फुफकारती है। गर्म और ठण्डा। पुरस्कृत भी करती है और प्रताड़ित भी करती है। दोनों स्थितियों में भय काम करता है।

यही हाल अध्यापक का है। पूरा भयभीत। डर के मारे सुरक्षा की तलाश में कभी किसी सरपंच की शरण में, तो कभी किसी राजनैतिक शतरंज में गोटी बन जाता है। कभी सीधा तो कभी टेढ़ा चलता है, मगर फिर भी पिट जाता है।

डर के मारे संगठन बनाता है। जोड़ने की कोशिश करता है। अकेला डरा हुआ होता है। जोड़-तोड़ कर संख्या जोड़ता है। डरे हुए लोगों का समूह चिल्लाता है। चाक पटक दो। पढ़ाओ मत, इम्तिहान मत लो, कापियाँ मत जाँचो।

व्यवस्था और अध्यापकों के बीच कुछ देर कबड्डी चलती है। लड़के मैच देखते हैं।

कुछ देर बाद दोनों थक जाते हैं दोनों पक्ष डरते हैं। डर के मारे बातचीत का वातावरण बनता है। समझौता होता है। शर्बत पीकर हड़ताली उठते हैं।

हड़ताली स्कूल पहुँचते हैं।

विद्यार्थी मैच की टेकनीक समझ जाते हैं। जब गुरु-चेलों के बीच एक और मैच शुरू होता है। चेले चिल्लाते हैं हम पढ़ेंगे नहीं। हम इम्तिहान नहीं देंगे। प्रश्नपत्र हम बनायेंगे। इम्तिहान अध्यापक देंगे और पास हम होंगे।" अध्यापक मेमना बन जाता है और विद्यार्थी भूखे भेड़िये।

अब अध्यापक असमंजस में।

अध्यापक का उद्धार कौन करेगा? ब्रह्मा के वश की बात नहीं।

(शेष पृष्ठ 43 पर)

विज्ञान : जनता के हित में

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि केरल शास्त्र साहित्य परिषद् विज्ञान को लोकप्रिय बनाकर आम जनता के बीच वैज्ञानिक समझ विकसित करने का काम पिछले 20 वर्षों से कर रही है। परिषद् के कार्यकर्ता स्वास्थ्य पर्यावरण, ऊर्जा उत्पादन, सिंचाई, यातायात एवं अन्य क्षेत्रों के जानकार हैं। इन सभी क्षेत्रों में उठ रहे सवालों व समस्याओं को वैज्ञानिक व लोकहित के नजरिये से उघारकर उनका आम जनता में प्रचार करते हैं। परिषद् के कार्यकर्ता शिक्षक, बस कन्डक्टर, दफ्तर के बाबू, पोस्टमेन, बिजली के लाइनमेन हैं; जो अपनी नौकरी के अलावा पूर्णतः स्वेच्छिक रूप से परिषद् का कार्य करते हैं। ये ही कार्यकर्ता परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकायें बेचते हैं, विज्ञान यात्रायें करते हैं तथा स्कूली बच्चों के लिए तरह-तरह की ज्ञानवर्धक प्रतियोगिताएँ आयोजित करते हैं। यहाँ परिषद् के संबंध में अन्य जानकारी पढ़िये।

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर यूरेका लघु-प्रश्न प्रतियोगिता सिर्फ बच्चों तक सीमित नहीं है। यह गाँव की किसी खुली जगह पर होती है, जहाँ गाँव के लोग इकट्ठा हो सकें। इसके दौरान एक मेला-सा लग जाता है। बच्चे घेरा बना कर बैठ जाते हैं। "क्विज मास्टर" इस प्रतियोगिता का संचालक होता है। परिषद् की तरफ से कोई 30-40 प्रश्न भेजे जाते हैं। "क्विज मास्टर" (कई बार परिषद् का कार्यकर्त्ता और अगर वह नहीं हो तो स्कूल का प्रशिक्षित अध्यापक/अध्यापिका) एक बच्चे से एक सवाल पूछता है। अगर वह जवाब न दे सका तो दूसरे से, फिर तीसरे से। जो भी सही जवाब दे, उसे एक अंक मिल जाता है। पर आमतौर पर ऐसी प्रतियोगिताओं में किस्मत का खेल बहुत होता है, जो कि अवैज्ञानिक है। कुछ बच्चों को सरल सवाल मिल जाते हैं, कुछ को कठिन। और सबको बराबर की संख्या में प्रश्न पूछे जाने का मौका भी नहीं मिलता। इस कमी को दूर करने के लिए परिषद् ने एक नया तरीका निकाला है। हर दो बच्चे के पीछे एक स्वैच्छिक सहायक खड़ा रहता है (हो सकता है वह भी स्कूल का छात्र या शिक्षक हो) और हर बच्चे को कागज की पर्चियाँ पहले से ही दी जाती हैं। हर सवाल का जवाब हर बच्चा उन पर्चियों पर लिख कर पीछे वालंटीयर (स्वयंसेवक) को पकड़ा देता है। जिससे असल में पूछा गया है वह तो जबानी जवाब देने की कोशिश करता ही है। इस तरह से उन सभी बच्चों को अंक मिल जाते हैं, जिन्हें जवाब आता है। पहले-पहले इस तरीके का काफी विरोध हुआ। इसमें होड़ का मजा कुछ कम हो जाता है। पर धीरे-धीरे लोगों की आपत्ति दूर हो गई।

इन प्राइमरी व उच्च प्राइमरी प्रतियोगिताओं में से एक विद्यार्थी चुन कर जिला-स्तरीय प्रतियोगिता में भाग लेता है। इन प्रतियोगिताओं में जीतने वालों को शुरू-शुरू में तो सिर्फ प्रमाण-पत्र दिए जाते थे। पर अब छात्रवृत्ति भी दी जाती है। प्राइमरी व मिडिल स्कूल-स्तर पर पचास रुपये सालाना तीन साल तक, जिला-स्तर पर सौ रुपये सालाना दो साल तक। राज्य-स्तर पर पुरस्कार व छात्रवृत्ति के साथ-साथ स्कूल को वैजयन्ती (ट्रॉफी) भी मिलती है।

अब तो यह प्रतियोगिताएँ व उनसे जुड़ी छात्रवृत्ति, वैजयन्ती वगैरह इतनी ख्याति प्राप्त हो गए हैं कि इनमें सफल होना गर्व की बात मानी जाती है। लोग इन प्रतियोगिताओं के लिए तैयारी करते हैं। कोचिंग, कुंजियाँ व प्रश्न-पत्रों की चोरी जैसी प्रथाएँ (जो कि संस्थापित शिक्षा पद्धति से जुड़ी हुई है) इनके संदर्भ में भी फलने-फूलने लगी हैं। पर इस तरह की सामाजिक मान्यता व दबाव का फायदा उठा कर परिषद् लोगों को अपनी किताबें पढ़ने व उससे कई जरूरी बातें जानने व सीखने के लिए बाध्य कर रही है। इस तरह से नए मूल्यों के प्रति समाज के स्वाभाविक विरोध का सामना किया जाता है।

समाज में प्रचलित प्रतियोगिता, होड़, व्यक्तिगत ख्याति जैसे मूल्यों का लाभ-उठाकर नए मूल्यों के लिए जगह बनाई जा सकती है। एकलव्य संस्था भी ऐसा ही कुछ करना चाहती है। पर क्या प्रचलित पाठ्यक्रम के अलावा अगर ऐसी प्रतियोगिताओं के लिए बच्चों को तैयारी करनी पड़े तो उन पर पढ़ाई का दोहरा भार रहेगा? या इसी से तो नए पाठ्यक्रम के पक्ष में दबाव बढ़ेगा?

पर यहाँ सवाल उठा परिषद् के खिलाफ लगाए गए एक आरोप का। वह यह कि अगर परिषद् का उद्देश्य इंसान के बीच सहयोग व मेलजोल की भावना को प्रोत्साहित करना है तो वह स्वयं क्यों इतनी प्रतियोगिताओं को प्रोत्साहन देती है? डॉ. परमेश्वरन ने अपना मत दिया कि आज प्रतिस्पर्धा की भावना एक सामाजिक सच्चाई है। इसे सीधे-सीधे नकारा नहीं जा सकता। अतः पहले द्वेषपूर्ण प्रतियोगिता को आनन्दपूर्ण प्रतियोगिता में बदलने की कोशिश करनी चाहिए। और फिर प्रतियोगिता में ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए कि उनके उत्तर मानव सहयोग के प्रयत्नों की तरफ संकेत करें।

उदाहरणतः जिन मशीनों से आज उत्पादन होता है वो कैसे बनी? उसमें कुछ कच्चा माल लगा, कुछ मजदूरों का श्रम और कुछ मशीनें। ये मशीनें कैसे बनी? इन पहले वाली मशीनों के बनने में उस समय व स्थान के मजदूरों का श्रम लगा, कुछ कच्चा माल व कुछ पहले की मशीनें। ये पहले की मशीनें

कैसे बनीं? यह भी मजदूरों के श्रम से और कुछ कच्चे माल से व पहले से ही मौजूद मशीनों से। इस तरह अगर हम पीढ़ी दर पीढ़ी एक मशीन के बनने की कहानी खोजते जाएँ तो शायद मनुष्य की पहली मशीनों तक पहुँच जाएँगे—यानि की दो पत्थर, जो उसने ऐसे ही जमीन पर से उठा लिए थे। वे किसी की सम्पत्ति नहीं थे। और माँ-बाप की सम्पत्ति जैसे बच्चों को विरासत में मिलती है, उसी तरह आज की पीढ़ी के बच्चों को उनके दादा-परदादाओं की सम्पत्ति विरासत में मिलनी चाहिए, एक को नहीं सबको। कोई व्यक्ति सिर्फ पैसे से खरीदने के बल पर कैसे किसी चीज को सिर्फ अपनी निजी सम्पत्ति मान सकता है? हर एक चीज दुनिया भर के सारे मजदूरों की सारी पीढ़ियों की सम्पत्ति है। उनके सामूहिक व एकत्रित श्रम का ठोस रूप है। श्रम-सम्पत्ति-उत्पादन संबंधी इन अवधारणाओं को उभारने वाले चुने हुए सवाल पूछ कर, परिषद् की कोशिश है कि वर्तमान समाज के व्यक्तिवादी, पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा से लेस मूल्यों को काटें।

अनौपचारिक शिक्षण: कई बच्चे स्कूल बीच में ही छोड़ देते हैं, और गाँव के आम लोगों को भी वैज्ञानिक शिक्षण से वंचित रहना पड़ता है। उनकी धर्मांधता, रूढ़ियों व अंधविश्वासों, भाग्यवादी मानसिकता आदि पर औपचारिक शिक्षण द्वारा प्रभावोत्पादक प्रहार नहीं हो पाता। और फिर लिखित शब्द (किताबें/पत्रिकाएँ) ही तो विचारों के प्रसार का सबसे अच्छा माध्यम नहीं हैं। परिषद् अन्य सांस्कृतिक माध्यमों से अपने विचारों व वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लोगों तक पहुँचाने की कोशिश करती है। केरल की लोक कला के माध्यम से, नृत्य-नाटक, गीत-संगीत से लैस परिषद् की 1980 से 1982 तक तीन विज्ञान यात्राएँ निकल चुकी हैं।

इन यात्राओं ने 2 अक्टूबर से 7 नवम्बर 1982 तक 37 दिनों में गाँव-गाँव घूम कर तीन-तीन हजार किलोमीटर की दूरी नापी, एक दिन में छः-छः घन्टों के कार्यक्रम दिए। कुल मिलाकर दोनों यात्राओं ने 330 बैठकें की। गाँधी के जन्म दिन से लेकर सी.वी. रमण के जन्म दिन तक गाँधी के विज्ञान से रमण के विज्ञान तक का प्रतीक। कई एक जगहों पर दस-दस हजार लोग इनकी बैठकों में भाग लेते। टीम के ठहरने-खाने का सादा इन्तजाम हर केन्द्र पर बनी परिषद् की स्वागत समिति करती। रात के भोजन के बाद टीम के लोग सबके साथ बैठ कर दिन भर के कार्यक्रम के ऊपर चर्चा करते। इन यात्राओं के दौरान ही परिषद् की विज्ञान की पुस्तकें, पर्चे आदि बेचे जाते हैं।

इन्हीं यात्राओं के दौरान एक नाटक किया गया। "एकलव्य" कहानी को कुछ अपने ढंग से बनाकर, समझाकर, मानव के विकास, विज्ञान व श्रम की कहानी कही गई। उसमें अंगूठे के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। मनुष्य ही एक ऐसा जानवर है जिसका अंगूठा बाकी चार ऊँगलियों से जुड़ा नहीं है और अपने आप गोलाई में घूम सकता है। दक्षिणा में एकलव्य से यही अंगूठा माँगा गया और जबर्दस्ती उसे काटा गया। इसके बाद नाटक में दिखाया जाता है कि किस तरह पैरों के बल चल पाने के कारण मनुष्य के दो हाथ अन्य कामों के लिए मुक्त हो गए और किस तरह इन्हीं हाथों के श्रम से वह सब विकास हुआ जो आज मानव जाति का श्रेय है। मेहनतकश लोगों का वही अँगूठा जबर्दस्ती काटा गया; राजाओं के एकछत्र गौरव को सुरक्षित रखने के लिए।

सवाल उठा कि क्या एकलव्य की कहानी को इस प्रकार का अर्थ दे देने से केरल में विरोध नहीं हुआ? क्या मध्यप्रदेश की तरह ही केरल में भी एकलव्य की गुरु के लिए हर प्रकार का त्याग कर दक्षिणा देने वाली धारणा प्रचलित नहीं है? डॉ. परमेश्वरन ने बताया कि ऐसा वहाँ अधिक नहीं है और एकलव्य की कहानी बहुत ज्यादा प्रचलित भी नहीं है।

इसी तरह एक और नाटक है—आयात। जिसमें एक दोस्त दूसरे को बहुत परेशान होकर बताता है कि वह त्यौहार नहीं मना सकता, दारू नहीं पी सकता। क्योंकि नारियल, कोको, टेपियोका, कालीमिर्च, रबड़ सं कृषि पदार्थों के दाम गिर रहे हैं। उसक दोस्त काफी हँसी-मजाक के बाद उ समझाता है कि यह सब टाटा-बिड़ला (व पूँजीपतियों का सामान्य द्योतक) की वज से हो रहा है। वे अपने उद्योगों के लिए इन सब कच्चे माल को सस्ता बनाने के लिए ये चीजें बाहर से आयात करते हैं।

"फिर यह कम्बख्त सरकार क्यों कुछ नहीं करती यह सब रोकने के लिए?"

"सरकार तो उनकी जेब में है। और जरूरत पड़ने पर ये लोग सरकार से भी आयात कर सकते हैं।"

"अरे, तो फिर हमारी आजादी भी खतरे में है। हम गुलाम हो जाएँगे...कोई रास्ता नहीं?"

"एक रास्ता है। अगर हम सब लोग संगठित हो जाएँ तो जरूर कुछ कर सकते हैं। तब हम आयात करने वालों को निर्यात कर सकते हैं।"

विज्ञान यात्राओं के अलावा, परिषद् कई अन्य अभियान चलाती है। इस दौरान जगह-जगह पर लोक कक्षाएँ ली जाती हैं। 1676 में एक महीने में 12,000 कक्षाएँ ली गईं। लाखों लोग इन कक्षाओं में (जो स्कूल के बाहर भी होती हैं) भाग लेते हैं। इनके दौरान परिषद् का साहित्य भी बेचा जाता है और इन मोर्चों में ही परिषद् के कई गाने व नारे उभरे। उनकी लोकप्रियता देखते हुए ही विज्ञान यात्राओं पर निकलने का फैसला किया था। (गानों को शास्त्र गीत कहते हैं।) कक्षाओं के विषय कुछ ऐसे होते हैं: समाज, प्रकृति और विज्ञान, समय क्या है, केरल की सम्पदा....। इन कक्षाओं के माध्यम से विज्ञान की कठिन अवधारणाएँ भी सरल तरीके से बच्चों, किसानों, मजदूरों तक पहुँचाई जाती हैं।

इसी तरह कारीगरों व तकनीशियनों के लिए स्कूल, प्रौढ़ शिक्षा का काम, बच्चों के लिए विज्ञान केन्द्र (जहाँ वे आकर कई तरह के रोचक प्रयोग कर सकते हैं) चलाए जाते हैं।

(क्रमशः)

पहेलियाँ

ारा सिर तो खुजलाइये

इतनी जोर से नहीं कि आपके बाल ही जायें । सिर खुजलाने की बात इसलिये रही है क्योंकि यह कालम आपको चैन लेने देगा—जब तक आप उसमें दिये लों और पहेलियों के जवाब नहीं ढूँढ़ । पहेलियाँ खेल और मज़ा तो देती ही उनके पीछे अकसर बहुत ज्ञान छिपा होता कभी वह भाषा की किसी पेचीदगी पर र करती हैं, तो कभी वह हमारे विचार ने के ढंग की किसी कमजोरी के साये में कर हमें परेशान करती हैं । यहाँ अलग-ग तरह की चार पहेलियाँ दी जा रही हैं। के उत्तर हम अगले अंक में छापेंगे । मगर द यह उत्तर उतने कठिन नहीं जितना कि को पहली नज़र में लगे और इतने ान भी नहीं कि आप इन्हें बायें हाथ का समझें ।

तस्वीर किसकी थी ?

एक मज़ेदार पहेली है जो बहुत दिनों से ी आ रही है, फिर भी जिसका मजा कम पड़ता । दिलचस्प बात इसमें एक यह भी के गलत उत्तर देने के बाद भी लोग बहस ते हैं कि वे सही हैं और उनको सही उत्तर झाना कठिन होता है ।

आदमी किसी की तस्वीर को देख रहा । एक दूसरे आदमी ने उससे पूछा, "तुम की तस्वीर को देख रहे हो ?" पहले मी ने उत्तर दिया, "बहन या भाई तो हैं नहीं कोई, पर इस आदमी का बाप है बाप का बेटा ।" (यहां पर "इस आदमी बाप" से अर्थ है तस्वीर में जो आदमी उसका बाप)

ाल यह है कि पहला आदमी किसकी ीर देख रहा था ?

कितने मोजे ?

यह पहेली बहुत ही आसान है और शायद आप में से कोई इसे जानते भी हों ।

चौबीस लाल और चौबीस नीले मोज़े एक थैले में रखे हैं, जो एक अँधेरे कमरे में लटका है । हम थैले में से कम से कम कितने मोजे निकालें कि एक ही रंग के दो मोज़े निश्चित ही हमें मिल जायें ?

(यह बात तो साफ है कि अन्धेरे के कारण हम मोजे बगैर रंग देखे निकाल रहे हैं ।)

छुट्टी जल्दी हो गई

एक शिक्षिका का स्कूल रोज पाँच बजे समाप्त होता है । और ठीक इसी समय रोज उनके पति उनको घर ले जाने स्कूटर से पहुँच जाते हैं। एक दिन स्कूल की छुट्टी चार ही बजे हो गई । मौसम चूँकि अच्छा था, शिक्षिका पति का इंतजार किये बिना ही घर की तरफ उसी रास्ते से चल दी, जिस से उनके पति उन्हें लेने आते थे । रास्ते में उनको अपने पति आते हुए मिले । शिक्षिका स्कूटर पर सवार हो गई और वे दोनों घर चल दिये । उस दिन वे घर रोज की अपेक्षा दस मिनिट पहले पहुँच गये । यह मानते हुए कि पति अपना स्कूटर हमेशा एक ही रफ्तार से चलाते हैं और उस दिन वह घर से ऐसे समय पर निकले थे कि शाला ठीक पाँच बजे पहुँच जायें, क्या आप पता कर सकते हैं कि जब पति रास्ते में मिले, तब तक शिक्षिका कितनी देर पैदल चल सकी थीं ?

दोस्ताना माहौल

एक बैठक में आये सभी लोगों ने चर्चा शुरू होने से पहले एक दूसरे से हाथ मिलाया । कुल छयासठ (66) बार हाथ मिलाये गये । क्या आप बता सकते हैं कि बैठक में कितने लोग शरीक थे ?

छात्र खाली बर्तन नहीं है

सुविख्यात जर्मन गणितज्ञ फ़ेलिक्स क्लाइन स्कूली छात्र की तुलना तोप से करते थे, जिसमें दस वर्षों तक ज्ञान ठूँसा जाता है और फिर दाग़ दिया जाता है, जिसके बाद उसमें कुछ भी नहीं बचा रहता । यह कटु व्यंग्य मुझे तब याद आता था, जब मैं किसी बच्चे को वह सब याद करते देखता था, जिसे वह समझता नहीं था, जिससे उसकी चेतना में कोई भी सजीव बिंब, चित्र नहीं बनते थे, उस विषय से संबंधित कोई बात, कोई विचार नहीं उभरते थे । विचारों के स्थान पर स्मृति को रखना, उनका प्रत्यक्ष बोध पाने के स्थान पर उनके बारे में जानकारी को रटना—यह एक बहुत बड़ी बुराई है, जो बच्चे को मंदबुद्धि बनाती है और अंततः पढ़ाई में उसकी सारी रुचि जाती रहती है ।

○

(पृष्ठ 40 का शेष)

विष्णु भागकर कोई नया बद्रीनाथ देखेगा । अध्यापक का उद्धार क्या संभव है ?

संभवतः उद्धार हो सकता है और यह उद्धार वह स्वयं ही कर सकता है । परन्तु उसकी कार्य-शैली बदलनी होगी ।

ब्रह्मा बनने के बदले, वह बने एक गुरिल्ला ।

बौद्धिक गुरिल्ला ।

गुरिल्ला अकेला लड़ता है ।

मारो और भाग जाओ ।

गुरिल्ला लड़ाई आखरी दम तक लड़ी जाती है । इसमें समझौता नहीं होता । लड़ाई की अवधि नहीं होती ।

कबीर एक गुरिल्ला था, सुकरात भी । जहाँ मौका मिला मार की ।

बौद्धिक गुरिल्ला बनकर ही अध्यापक लड़ सकता है । उसी हालत में उसकी मंशा कोई मायने रख सकती है, अन्यथा नहीं ।

मा. रा. शर्मा

("नया शिक्षक" से साभार)

आम आदमी के जीवन में थोड़ी और खुशहाली

- जिला पंचायतों के गठन से प्रदेश में त्रिस्तरीय पंचायती राज लागू ।
- ऋण मुक्ति - अभियान के अन्तर्गत 19 लाख किसानों को 38.25 करोड़ की तकाबी माफ ।
- महिला और बालक कल्याण के लिए 1 करोड़ रुपये का कमला नेहरू कोष स्थापित । 70 प्रतिशत 6 से 11 और 35 प्रतिशत 11 से 14 वर्ष के बच्चों को स्कूलों में दाखिला, 106 नए महाविद्यालय खोले गए, 39 महिला महाविद्यांलय कार्यरत ।
- डेढ़ लाख झुग्गी झोपड़ी में बसे लोगों को मालिकाना हक। हजारों रिक्शा चलाने वाले अपने रिक्शों के मालिक बनेंगे । 81 हजार भूमिहीनों को 77588 एकड़ जमीन वितरित ।
- 156 करोड़ रुपये पूंजी से 83643 ग्रामीण और छोटे उद्योग स्थापित । 2 लाख लोगों को रोजगार । पहली बार न्यूनतम मजदूरी को मूल्य सूचकांक से जोड़ा गया ।
- 6000 से ज्यादा आदिवासियों को उनकी हड़पी जमीन वापिस । 1 लाख से ज्यादा गरीब लोगों को 118 करोड़ रुपये की मदद ।
- 27432 गांवों को पानी और 36777 गांवों को बिजली मुहैय्या । 1 लाख 75 हजार से ज्यादा एक बत्ती कनेक्शन ।

सू. प्र. सं. 1409/डी/84
5-10-84

सहयोग राशि : एक रुपया **डाक खर्च अतिरिक्त**

एकलव्य, E/1-208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं नईदुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर–9 द्वारा मुद्रित ।
सम्पर्क : एकलव्य, नेहरू कॉलोनी, हरदा (म. प्र.)